Chapter-3

तृतीय अध्याय

(व्यक्तित्व विश्लेषण एवं काव्यकार की राष्ट्रीयता विषयक अवधारणाएँ)

किसी भी काव्य को सम्यक् रूपेण आत्मसात् करने के लिए कवि के चिन्तन एवं व्यक्तित्व को प्रभावित करनेवाले विविध चेतना- प्रवाहों का विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक होता है । कवि संवेदशनील होता है । वह जिस समाज और राष्ट्र में जीवनयापन करता है उस समाज और राष्ट्र की विभिन्न परिस्थितियों से वह प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित होता ही रहता है । उसके व्यक्तित्व गठन में यद्यपि अपने वंशानुगत निहित संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है तथापि उसमें तत्युगीन सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक साँस्कृतिक एवं साहित्यिक सम-विषम परिस्थितियों का भी अभूतपूर्व प्रभाव परिलक्षित होता है । यदि वह व्यष्टिपरक चिन्तन को जीवन में प्राधान्य देनेवाला कवि होता है तो वह अपनी अंतरंग प्रेरणाओं को महत्त्व प्रदान करते हुए अंतर्मुखी अधिक रहता है । वह अपने सीमित आयामों में रहकर चिन्तन प्रधान काव्य-सर्जन करने की चेष्टा करता है ।

किन्तु दूसरे प्रकार का कवि जिसका व्यक्तित्व समाज या राष्ट्र की युगीन विषम परिस्थितियों से प्रभावित ही नहीं अभिभूत होने पर काव्य-सर्जना करता है, समष्टिपरक अधिक होता है । अपने वैयक्तिक द्वंद्वों एवं पारिवारिक समस्याओं की उपेक्षा सी करता हुआ वह समाज और राष्ट्र की यथार्थपरक विशद व्याख्या करता है । वह व्यक्तिगत स्वार्थ एवं आशा-आकांक्षाओं की परिसीमा से बाहर निकलकर राष्ट्र के उत्कर्ष के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर देता है । राष्ट्रीय चेतना की जागृति एवं उत्कर्ष ही उसका उपजीव्य बन जाता है । कहना न होगा कि पं० सोहनलाल द्विवेदी का कवि इसी प्रकार का व्यक्तित्व लिए हुए है । उनका कवि व्यष्टिपरक कम और समष्टिपरक अधिक है । वह निजी स्वार्थों एवं सुख-सुविधाओं की आहुति देते हुए समाज एवं राष्ट्र के उत्कर्ष की चिन्ता अधिक करता है । कवि एक व्यक्ति के रूप में अपने संचित संस्कारों एवं कतिपय अर्जित गुणों के कारण जैसा चिन्तन

करता है वैसा ही अपने जीवन में उसे उतारते हुए आचरण करना भी पसंद करता है ।

द्विवेदी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अनुशीलन करने पर तथा उनके प्रत्यक्ष संपर्क में आने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि वाणी और व्यवहार में सामंजस्य चाहते हैं । उनके बाह्याभ्यंतर व्यक्तित्व को भलीभाँति समझने के लिए हमें उनकी संक्षिप्त जीवनीएवं कतिपय विशिष्ट जीवन प्रसंगों से परिचित हो लेना परम आवश्यक प्रतीत होता है ।

संक्षिप्त जीवनी:

जन्म एवं परिवार :

पं० सोहनलाल द्विवेदी का जन्म संवत् १९६२ वि० की फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को अर्थात् सन् १९०५ ई० में उत्तरप्रदेश के फतेहपुर जिले के बिन्दकी नामक एक कस्बे में एक संपन्न वैष्णव कान्यकुब्ज परिवार में हुआ था । पिता बिन्दाप्रसाद द्विवेदी बिन्दकी में ही गल्ले के बड़े माने हुए व्यापारी थे, किन्तु धनोपार्जन ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य न था । कस्बे की जनता के दुःख- दर्द को समझकर उसके दैनंदिन प्रश्नों का सुखद समाधान कराने का निस्वार्थ यत्न उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया था । वे एक प्रकार से अपने गांव के दीवानी, फौजदारी दोनों के सम्मान्य न्यायाधीश थे । कस्बे में सर्वत्र उनकी धाक थी । कवि के बड़े भाई पं० मोहनलाल द्विवेदी पिता जी के पद-चिन्हों पर चलते हुए पारिवारिक उत्तरदायित्व का निर्वहण करने के हेतु आजीवन धनोपार्जन में लगे रहे । सन् १९१२ ई० में पिता जी के निधनोपरान्त सप्तवर्षीय बालक सोहनलाल की परवरिश का भी उत्तरदायित्व बड़े भाई के कंधों पर आ पड़ा जिसका निर्वहण उन्होंने बड़ी ईमानदारी के साथ किया । इस तरह पैतृक संपत्ति के रूप में सोहनलाल जी को जो विरासत मिली वह थी आर्थिक संपन्नता, जनता की निस्वार्थ सेवा तथा कायरता से विद्रोह ।

विद्याध्ययन : (राष्ट्रीय संस्कारों का बीजवपन काल)

प्राथमिक शिक्षा बिन्दकी में ही संपन्न करके सोहनलाल ने सन् १६२१ ई० में एंग्लो-संस्कृत विद्यालय, फतेहपुर में प्रवेश लिया । अभी-अभी बिंदकी से आया हुआ किशोर सोहनलाल अपने स्वावलंबी स्वभाव एवं राष्ट्रवादी विचारों के कारण स्कूल में प्रसिद्ध हो गया था । इधर भारतीय राजनीतिक परिस्थितियाँ आंदोलन का रूप धारण कर चुकी थीं । २७ नवम्बर सन् १६२१ ई० के दिन 'प्रिंस आफ वेल्स' के स्वागत की पूर्ण तैयारियाँ शक्ति और आतंक के आधार पर की जा रही थीं । आदेशानुसार सोहनलाल के स्कूल को भी अत्याधिक उत्साह के साथ सजाया जा रहा था । सामूहिक प्रार्थनोपरांत युवराज के भारत आगमन की प्रसन्नता में मिठाई वितरित की जाने लगी । मिठाई के लालची लड़के प्रसन्न-वदन दृष्टिगत हो रहे थे किन्तु इतने में एक स्वाभिमानी आक्रोशयुक्त स्वर कृत्रिम शांति और भावावेग के आवरण को विच्छिन्न करता हुआ चीख उठा, 'मुझे नहीं चाहिए यह मिठाई । मास्टर साहब, गुलामी के लड्डू खाने से आज़ादी के चने चबाना बेहतर है ।'[1] कहकर सोहनलाल देखते-देखते सैकड़ों छात्रों के साथ जुलूस निकालते हुए फतेहपुर की गलियों-सड़कों पर गगनभेदी गर्जनाएं करते हुए घूमने लगे-

'माता का आंचल लाज करो ।
हड़ताल करो, हड़ताल करो ।।'[2]

मोहनलाल जी के इस साहस-प्रदर्शन का समाचार बिन्दकी पहुँचा । अप्रत्याशित समाचार सुनते ही अग्रज बंधु श्री मोहनलाल चिंतित हो उठे । इधर स्कूल के हिन्दी अध्यापक पं० बलदेवप्रसाद शुक्ल ने किशोर सोहनलाल को आत्मबल, संयम एवं आदर्श जीवन के पाठ पढ़ाना प्रारंभ किया । सन् १६२२ ई० के असहयोग आंदोलन को जब गांधी जी ने आकस्मिक स्थगित कर दिया तब किसानों के प्रतिक्रियात्मक

विद्रोह को दबा देने के लिए रायबरेली में भीषण गोलीकांड हुआ जिसका श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' के माध्यम से उत्कट विरोध किया । वे जहाँ गये नया उत्साह भरने लगे । तूफान की तरह जनमानस को उद्वेलित करने लगे । संयोगवश वे फतेहपुर में भी आये जहाँ उन्होंने अंग्रेज शासन के विरुद्ध ऐसा प्रभावोत्पादक व्याख्यान दिया कि संपूर्ण नगर में हलचल मच गई । उसमें उपस्थित सोहनलाल के किशोर मानस पर उसका अमिट प्रभाव पड़ा । अब वे सभा, जुलूस हड़ताल आदि में सक्रिय रूप से सम्मिलित होने लगे । साथ ही गांधी जी के तकली, चरखा और खादी के अभियान का भी उन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा । परिणाम यह हुआ कि स्कूली शिक्षा के समयांतर्गत उन्होंने रेशमी (विदेशी) वस्त्रों को तिलांजलि देते हुए राष्ट्रीय परिधान के रूप में आजीवन खादी को ग्रहण करने का संकल्प किया ।

सोहनलाल जी का भारतीय राजनीति में सक्रिय रूप से सम्मिलित होना और खद्दर पहनना अग्रज मोहनलाल को अखरने लगा । वे सोचने लगे, उन पर जिम्मेदारी का बोझ डाल देने पर ये सही रास्ते पर आ जाएंगे । फलतः वे विवाह का प्रस्ताव लेकर सोहनलाल के सम्मुख उपस्थित हो गये । इच्छा न होते हुए भी बड़े भाई का समादर करते हुए सोहनलाल ने विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । अब तो बड़े पैमाने पर तैयारियाँ होने लगीं । रईसी शान-बान के साथ विवाह संपन्न करने के लिए मूल्यवान रेशमी वस्त्र खरीदे गये । किन्तु यह क्या ? सोहनलाल ने रेशमी वस्त्रों को परिधान न करने की अपनी प्रतिज्ञा घोषित की और कहा कि वे केवल राष्ट्रीय परिधान के प्रतीक रूप खादी के ही वस्त्र धारण करेंगे । अग्रज मोहनलाल जी की आशाओं पर मानो तुषारापात हो गया । भाई समेत सब साथियों-सहपाठियों ने उन्हें बहुत समझाया किन्तु वे रेशमी वस्त्रों में सुसज्जित वरराजा बनकर विदेशी वस्त्रों को प्रश्रय देना कभी नहीं चाहते थे । वे अपनी जिद पर अड़े रहे । अन्ततोगत्वा सोहनलाल जी की विजय हुई और रेशमी आंचल से

खादी के पटुए का ग्रंथि-बंधन हो गया । वैवाहिक जीवन व्यतीत करने पर भी बड़े भाई की शीतल छत्रछाया में रहने के कारण सोहनलाल को पारिवारिक समस्याओं का न कभी सामना करना पड़ा, न कभी अर्थोपार्जन की चिंता से व्यग्र होने पड़ा । कहीं कोई जुलूस निकला या सत्याग्रह हुआ तो कविता बन गई । कोई नेता पकड़ा गया या जेल से मुक्त हुआ तो उस पर कविता लिखी जाती थी । फतेहपुर के प्रसिद्ध नेता बाबू वंशगोपाल के जेल से मुक्त होने पर सोहनलाल ने एक कविता लिखी जो आज उपलब्ध नहीं है । अब वे फतेहपुर में केवल विद्रोही छात्र के रूप में ही नहीं अपितु उदीयमान कवि के रूप में भी प्रसिद्ध होने लगे । इधर सन् १९२५ ई० में सोहनलाल एंग्लो-संस्कृत विद्यालय, फतेहपुर से हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण हुए ।

विश्वविद्यालय में अध्ययन :

हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी उन दिनों उच्च शिक्षार्थ प्राप्ति का प्रमुख केन्द्र था जिसका स्तर अन्य विश्वविद्यालयों की तुलना में ऊँचा था । एक ओर वहाँ बाबू श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पं० केशवप्रसाद मिश्र इत्यादि प्रसिद्ध एवं विशेषज्ञ मनीषी प्राध्यापक थे, तो दूसरी ओर वह राष्ट्रीय विचारधारा से परिपुष्ट वातावरण का प्रसिद्ध केन्द्र भी था । युवक सोहनलाल ने अग्रज मोहनलाल की अनुमति लेकर जुलाई १९२७ में नये छात्र के रूप में इस विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त किया । यहाँ आते ही उन्होंने देखा कि विद्यालय का वातावरण राष्ट्रीयता से ओत प्रोत है । विद्यालय के अध्ययन कक्षों में अंग्रेज गवर्नर या वायसराय के चित्रों की अपेक्षा महाराणा प्रताप, भगवान बुद्ध, सम्राट अशोक आदि देश के ज्योतिर्धरों के चित्र हैं । राष्ट्रीय नेता गांधी जी, नेहरू, सरदार पटेल आदि का शुभागमन एवं उनका ही यथोचित अभिनंदन होता है तो कवि-हृदय सोहनलाल प्रफुल्लता का अनुभव करने लगे । उन्हें अपनी रुचि का वातावरण मिल गया । पंख फड़फड़ाते विहग-शावक को उड़ने के लिए उन्मुक्त, अनन्त नीलाकाश मिल गया ।

फतेहपुर में टूटी-फूटी कविताएँ लिखनेवाला कवि अब पूर्ण तत्परता एवं मनोयोग के साथ कविता लिखने लगा। अपनी ही कक्षा में सुरक्षित राणाप्रताप के चित्र से प्रभावित कवि ने युगीन संदर्भों में प्रताप के व्यक्तित्व का उद्घाटन करते हुए तथा उनकी आवश्यकता की प्रतीति करते हुए 'राणा-प्रताप' शीर्षक से ओजस्वी कविता लिखी। मार्च १९२८ ई० के 'त्यागभूमि' में जब यह प्रकाशित हुई तब संपूर्ण विश्वविद्यालय में हलचल मच गई। छात्रों के अतिरिक्त, पं० केशवप्रसाद मिश्र जैसे प्राध्यापकों ने भी सोहनलाल की कवि-प्रतिभा की प्रशंसा की। तदर्थ संपूर्ण विश्वविद्यालय में वे स्नेह एवं सम्मान के पात्र बन गये।

इसी वर्ष विश्वविद्यालय के वार्षिकोत्सव पर पंडित मदनमोहन मालवीय जी की अध्यक्षता में सोहनलाल ने 'राणा-प्रताप' वाली ओजस्वी कविता का सस्वर पाठ किया जिससे स्वयं मालवीय जी भी अत्यधिक प्रभावित हुए और आशीर्वचन सुनाते हुए कहने लगे, 'मैं चाहता हूँ, ऐसी कविता का देश के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रचार हो रहा हो।'[3] उनका आशीर्वाद शब्दशः सत्य सिद्ध हुआ। 'राणा-प्रताप' कविता का देशव्यापी प्रचार-प्रसार हुआ। फलतः उनका नाम उदीयमान राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रतिष्ठित होने लगा। मालवीय जी ने उन्हें समय-समय पर उत्कृष्ट देश-प्रेम की कविताएँ विरचित करने के लिए अनुमोदित ही नहीं, प्रोत्साहित भी किया। अब कवि ने राष्ट्रीय कविताएँ लिखने का संकल्प कर लिया। यही वह केन्द्र बिंदु था जिसमें से अपरिमित परिधि को प्राप्त करने के लिए अनेक काव्य-किरणें विकीर्ण हुईं।

द्विवेदी जी केवल कविता ही नहीं, अपितु अत्यंत प्रभावोत्पादक शैली में भाषण भी देते थे। सन् १९२९ ई० में काशी, हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा संयोजित भाषण-प्रतियोगिता में भी वे स्वर्णपदक द्वारा पुरस्कृत किये गये थे।

सन् १९३० ई० का वह वर्ष द्विवेदी जी के बी० ए० अध्ययन की समाप्ति —

का वर्ष था । विद्यालय का दीक्षान्त-समारोह सन्निकट था । दीक्षान्त भाषण के लिए राष्ट्रपिता गांधी जी को निमंत्रित किया जा चुका था । द्विवेदी जी को ज्ञात होने पर उनके आनंद की सीमा न रही । गांधी जी से उनकी यह सर्वप्रथम प्रत्यक्ष भेंट थी । तदर्थ मिलनोत्सुक, व्याकुल कवि-हृदय उनके चरणों में कौन-सा उपहार प्रस्तुत किया जाय यह सोचता रहा । स्थूल और भौतिक उपहार की अपेक्षा सूक्ष्म और अन्तरतम के भावों का गरिमामय प्रतीक देने का निर्णय करके वे कविता के विषय-चयन के कार्य में संलग्न हुए । उस समय 'खादी' ~~स्वदेश~~ राष्ट्रीय आंदोलन की प्रतीक और युग चेतना का शंखनाद थी । अतएव कवि ने नई उमंगों एवं नये अर्थघटन के साथ 'खादी गीत' लिख डाला । दीक्षान्त समारोह के शुभ अवसर पर बापू एवं मालवीय जी की उपस्थिति में कवि ने अपनी नव-सर्जित 'खादी गीत' वाली कविता सस्वर सुनाई तो उपस्थित जन-समाज के उपरांत दोनों महानुभावों को भी प्रभावित कर गई । मालवीय जी का वात्सल्य उमड़ आया और अन्त:करण से आशीर्वाद की वर्षा करते हुए कहने लगे, 'युग- युग जियो सोहनलाल, और देश का, भारत माता का मुख उज्ज्वल करो, राष्ट्रभारती हिन्दी का मस्तक तुम्हारी सेवाओं से ऊँचा उठे । युग-युग जियो, युग-युग जियो, ऐसे पुत्र को जन्म देकर माँ की कोख धन्य हुई, यह हमारा विश्वविद्यालय धन्य धन्य हुआ ।'[४]

बापू भी कवि और उनकी कविता से अत्यधिक प्रभावित हुए । उनके आशीर्वाद से ही इसका कल्पनातीत प्रचार-प्रसार हुआ । इस गीत का रिकार्ड बना । गांधी-आश्रम मेरठ ने तो उसे गांधी जी के चित्र के साथ आर्ट पेपर पर मुद्रित कर सहस्रों की संख्या में वितरित किया और प्राय: सभी गांधी आश्रमों में संप्रेषित किया । 'खादी गीत' की इतनी तो धूम मची कि सभा-सत्याग्रहों में, हड़ताल जुलूसों में, दफतरों तथा स्कूलों में यह गीत बड़ी श्रद्धा एवं आत्मीयता के साथ गाया जाने लगा । जेल की कोठियों में भी इसने अपना स्थान जमा लिया ।

अर्थात् वह जनजीवन की प्रेरणा का स्रोत बन गया । परिणाम यह आया कि स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में रावी के तट पर मिलनेवाले कांग्रेस के ऐतिहासिक अधिवेशन में उसे स्थान मिला । इतना ही नहीं आगामी अधिवेशनों के लिए भी उसका स्थान निर्धारित हो गया । आजादी की बिगुल पर भी खादी-गीत की धुन बजने लगी ।

सन् १९३० ई० में बी० ए० की उपाधि प्राप्त करके द्विवेदी जी बिंदकी वापस आये और अग्रज मोहनलाल ने उनके सामने विलायत जाकर बेरिस्ट्री करने का साग्रह अनुरोध किया । यद्यपि सोहनलाल जी की इच्छा राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने वाली कविताओं का सर्जन करने की अधिक थी, तथापि अग्रज बंधु की इच्छा की पूर्ति के निमित्त उन्होंने विलायत जाकर अध्ययन करने के अनुरोध को स्वीकार कर लिया । किन्तु विलायत जाने से पहले मालवीय जी के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए वे उनके पास पहुंचे और सोत्साह उन्होंने अध्ययनार्थ विलायत जाने का अपना प्रस्ताव उनके सम्मुख प्रस्तुत किया । मालवीय जी के हृदय को जैसे व्याघात पहुंचा । कहने लगे, `जो देश संसार का गुरु रहा हो, उस देश के निवासी विद्यार्थियों से शिक्षा क्या ग्रहण करेंगे, स्वयं अंग्रेज बन जाएंगे । मैं ही कब विलायत गया हूँ । तुम यहीं रहकर पढ़ो । विलायत जाने का विचार त्याग दो । तुम जो कुछ यहाँ हो, वहाँ जाने पर न रह जाओगे । विलायत पास बैरिस्टरों की कमी नहीं है, जिस चीज की कमी है, तुम्हें उसकी पूर्ति करनी है । पढ़-लिखकर देश-सेवा करो, बैरिस्टर बनकर पैसा पैदा करनेवाले बहुत हैं ।[5] मालवीय जी की शुभकामना का मानो कवि के मानस पर जादुई असर हुआ । उन्होंने विलायत जाने का विचार सदा के लिए स्थगित कर दिया और शेष जीवन भारत में ही पढ़-लिखकर देश-सेवा के हित समर्पित करने का प्रण ले लिया । अब वकालत पढ़ने के लिए वे प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए। प्रयाग के नवीन वातावरण में मन न

लगने के कारण द्विवेदी जी पुन: बनारस, हिन्दू विश्वविद्यालय में आ गये और यहाँ रहकर उन्होंने एक साथ एम० ए० और एल० एल० बी० का अध्ययन प्रारंभ कर दिया। सन् १९३३ ई० तक में उन्होंने एम० ए०, एल० एल० बी० की द्विविध-उपाधियाँ प्राप्त कर लीं। अध्ययन के साथ-साथ उनकी काव्य-साधना निरंतर चलती रही। एल० एल० बी० के पश्चात् एडवोकेट के प्रशिक्षण के निमित्त दो वर्ष वे फतेहपुर में रहे।

सामाजिक जीवन तथा व्यवसाय :

फतेहपुर निवासकाल में वहाँ की जनता ने सन् १९३५ ई० में जिला परिषद फतेहपुर के सदस्य के रूप में उन्हें निर्वाचित किया। उक्त पद पर वे आठ वर्ष पर्यन्त रहे और परिषद की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान करते रहे। उनका मन वकालत में न लगा। उनकी रुचि तो राष्ट्रीय चेतना जागृत करनेवाली कविताओं का सर्जन करने की ही रही। तदर्थ वकालत करने का विचार स्थगित कर उन्होंने आजीवन साहित्य-साधना एवं सामाजिक सेवा करने का निर्णय लिया। इसी बीच सन् १९३८ से १९४४ ई० पर्यन्त उन्होंने लखनऊ से प्रकाशित दैनिक 'अधिकार' का संपादन कार्य पूर्णदक्षता के साथ संपन्न किया। संपादन के साथ-साथ उनकी साहित्य-साधना भी अनवरत रूप से पूर्ण प्रकर्ष के साथ चलती रही। किन्तु सन् १९४६ ई० में कवि के जीवन में एक दुर्घटना घटित हुई। अग्रज मोहनलाल के आकस्मिक निधन पर उन्हें पारिवारिक उत्तरदायित्व का कार्यभार निर्वहण करने के लिए बिंदकी आकर स्थायी रूप से रहना पड़ा। फलत: कवि की काव्य-साधना में आकस्मिक व्यवधान उपस्थित हो गया। यद्यपि कार्यभार का निर्वहण करते-करते समय-समय पर उनकी कतिपय काव्य-कृतियाँ प्रकाशित अवश्य होती रहीं, तथापि उसकी गति मंद रही। इधर सन् १९५७ से १९६८ ई० तक इंडियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित 'बाल साहित्य' नामक पत्रिका का

संपादन कार्य वे करते रहे । इस दीर्घ अवधि के अन्तर्गत उन्होंने कतिपय बाल-काव्य भी लिखे ।

बिन्दकी में रहने के कारण वे सामाजिक एवं शैक्षिक कार्य भी करते रहे । सन् १९६२ ई० में बिन्दकी में ही उन्होंने `शिशु भारती` नामक शिक्षा संस्था की स्थापना की और उसकी अध्यक्षता करते हुए उसके नियमित विकास एवं प्रगति के लिए प्रयत्नशील रहे । इसी वर्ष भारत सरकार ने उन्हें साहित्यिक शिष्ट मण्डल का नेतृत्व संभालते हुए नेपाल सम्प्रेषित किया । इस कार्यभार को उन्होंने सुचारु रूप से पूर्ण किया । इधर २० मार्च १९६४ ई० में वे बिन्दकी नगरपालिका के सर्वसम्मति से अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किये गये । निष्काम सेवावृत्ति से वे सोत्साह कार्य करते रहे किन्तु अपना उल्लू सीधा करने की मनोवृत्ति वाले कतिपय सदस्यों की कुटिलनीति के कारण स्वयं त्यागपत्र देकर उस दल-दल से मुक्त हो गये । १९६४ ई० में ही जिलाधीश द्वारा उन्हें स्पेशल मजिस्ट्रेट का पद प्रदान किया गया, किन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया । सन् १९६८ ई० में उत्तरप्रदेश शासन द्वारा उन्हें जनपद के जेल निरीक्षक के स्थान पर नियुक्त किया गया ।

सार्वजनिक सम्मान :

उनकी साहित्यिक एवं विविध क्षेत्रीय बहुविध सेवाओं की गणना करते हुए `कलात्रलय` सांस्कृतिक संस्था, कानपुर ने सन् १९६८ ई० में उन्हें ताम्रपत्र प्रदान किया । सन् १९६९ ई० में राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर ने उन्हें `साहित्य-चूड़ामणि` की उपाधि से विभूषित करते हुए एक प्रशस्ति-पत्र भी प्रदान किया । इसी वर्ष उनकी साहित्यिक सेवाओं की गणना करने के उद्देश्य से हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारों ने उनका अभिनंदन करना निश्चित किया । फलत: श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री नारायण चतुर्वेदी, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा वाचस्पति गैरोला के सहसम्पादकत्व में `एक कवि : एक देश`, पंडित सोहनलाल द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ का निर्माण हुआ और १४ सितम्बर १९६९ ई० में एक भव्य-समारोह का आयोजन कर कवि का सम्मान करते हुए उन्हें उक्त ग्रंथ भेंट किया गया । साथ ही उन्हें एक मान-पत्र एवं दुशाला भी समर्पित किया गया ।

राष्ट्रीय आंदोलन और सोहनलाल द्विवेदी :

(व्यक्तित्व पर पड़नेवाले संस्कार)

राष्ट्रीय कवि पं० सोहनलाल द्विवेदी का साहित्य जगत में अवतीर्ण होने का काल भारतीय राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त अस्तव्यस्त और राजनीतिक स्वातंत्र्य प्राप्ति की आतुरता का काल है। ज्वलंत विजय प्राप्त करके गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत आ चुके थे। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात ब्रिटिश शासकों की पक्षपात एवं अन्यायपूर्ण नीतियों का रहस्योद्घाटन हो गया था। तिलक के निधनोपरान्त कांग्रेस के सूत्रों को सम्हालने वाले दक्ष नेता की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था। इधर गांधी जी का राजनीतिक प्रभाव बढ़ रहा था। कुछ ऐसी परिस्थितियों में सन् १९२० ई० के नागपुर के कांग्रेस- अधिवेशन के पश्चात् गांधी जी ने असहयोग आंदोलन का जोर-शोर से प्रचार -प्रसार प्रारंभ कर दिया था। 'स्कूल या कालेज क्लर्क पैदा करने के कारखाने मात्र हैं' यह वे घोषित कर चुके थे। फलत: काशी, पंजाब, दिल्ली, बंगाल, गुजरात आदि प्रदेशों में विद्यापीठों की स्थापना हो चुकी थी। ऐसे असहयोग पूर्ण ~~के~~ आंदोलन के वातावरण में २७ नवंबर १९२१ ई० के दिन 'प्रिंस आफ वेल्स' के बंबई आगमन के समय उनके स्वागत कार्यक्रम का अत्यधिक विरोध प्रदर्शित करने का समाचार विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं द्वारा घोषित किया गया था जिसका उल्लेख हम प्रथम अध्याय के अंतर्गत कर चुके हैं। मिठाई का विरोध प्रदर्शित कर द्विवेदी जी ने विद्यार्थीकाल से ही ब्रिटिश शासन की अन्यायपूर्ण नीतियों का विरोध तथा गांधी निर्दिष्ट कार्यक्रम का स्वागत करने की नीति अपनायी। इधर विद्यार्थी जी के फतेहपुर में आगमन और वीरोत्तेजक प्रभावपूर्ण व्याख्यान के कारण द्विवेदी जी का किशोर मानस ~~उन्के~~ उद्वेलित हो गया। उनके चिन्तन में एक प्रकार से विद्युत प्रवाह की-सी उत्तेजना और आवेग ने स्थान लिया जो पर्याप्त समय तक प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रकारांतर से प्रदर्शित होता रहा।

असहयोग आंदोलन के स्थगन के पश्चात् गांधी जी ने रचनात्मक कार्यक्रम के

अंतर्गत संदर्भ चरखा एवं खादी के प्रचार-प्रसार के द्वारा स्वदेशी आंदोलन प्रारंभ कर दिया था । प्रस्तुत आंदोलन का द्विवेदी जी के मानस पर अमिट प्रभाव पड़ा । द्विवेदी जी के पाणिग्रहण प्रसंग में इसे लक्ष्य करते हुए विदेशी (रेशमी) वस्त्रों का परित्याग तथा दृढ़ संकल्प एवं अपनत्व के साथ खादी के वस्त्रों को अपनाया जाना, निर्दिष्ट किया जा चुका है ।

विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने से पूर्व कवि द्विवेदी जी के मानस पर दो भिन्न संस्कार लक्षित होते हैं । एक ओर गांधीवादी विचारों का समर्थन एवं आस्थापूर्ण व्यवहार दृष्टिगत होता है, तो दूसरी ओर गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे क्रांतिवीर के संपर्क से आवेगपूर्ण प्रतिक्रियात्मक व्यवहार भी दृष्टिगोचर होता है । विश्वविद्यालय में प्रवेश के पश्चात् भी वहाँ उक्त दोनों प्रकार के वातावरण के संपर्क में रहने के कारण उनका मानस द्विविध चिन्तन से परिपुष्ट रहा । कभी सशस्त्र क्रांतिकारियों द्वारा सर्जित वातावरण में भारी भीड़ में श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए 'फूलों भरा जनाजा उठाने' की ओजपूर्ण शैली में कविता करते रहे । फलत: गुप्तचर विभाग की सशंकित नजर में उन्हें रहना पड़ा । मालवीय जी को ज्ञान होने पर उन्होंने सोहनलाल को अपने सन्निकट बुलाकर वास्तविक स्थिति का परिचय प्राप्त करने का यत्न किया । दोनों में इस संदर्भ में जो पारस्परिक संवाद हुआ उसमें कवि की तत्कालीन मन:स्थिति और चिन्तन-प्रक्रिया स्पष्टरूपेण अभिव्यक्त हो जाती है जो कवि के ही शब्दों में इस प्रकार है, 'बाबू जी । मैं जेल जाने से घबराता नहीं । लेकिन मुझे गलत समझा जा रहा है । मैं न तो क्रांतिकारियों का साथी हूं और न क्रांतिकारी अथवा गरमदलीय । मैं विशुद्ध गांधीवादी हूं। मेरा अपराध इतना ही है कि मैंने जन-सभा में अमर शहीद यतीन्द्रनाथदास पर कविता पाठ किया है । भारतमाता के एक बलिदानी सपूत को श्रद्धांजलि दी है । श्रद्धांजलि अर्पित करना मेरा नैतिक अधिकार था । यों, मैं सशस्त्र क्रांति में विश्वास नहीं करता ।'[६]

प्रस्तुत उद्धरण से कवि की तत्कालीन मन:स्थिति स्पष्ट हो जाती है। वे विशुद्ध गांधीवादी हैं और उनका विश्वास अहिंसक क्रांति में है। किन्तु उनका युवा मानस अब तक सुस्थिर नहीं हो पाया था। तदर्थ परिस्थिति का आवेगपूर्ण प्रतिकार उनके व्यवहार में परिलक्षित होता है। तभी तो उन्हें समझने में प्राय: भ्रांति होती रही है। मालवीय जी ने सोहनलाल के आवेगपूर्ण व्यवहार पर संयम लाने और उन्हें गांधी जी की अहिंसात्मक रीति-नीतियों के चिन्तन में सुस्थिर करने के उद्देश्य से आदेश दिया, 'तुम विद्यार्थियों का सत्याग्रह करके जेल जाने से कोई लाभ नहीं है। पहले अध्ययन करो। पढ़ो लिखो। जब योग्य बन जाओगे तब एक दिन में ही देश की इतनी सेवा कर लोगे, जितनी जीवन भर जेल काटकर नहीं कर सकते। तुम्हारा पहला काम है- अध्ययन। उसे प्रमुखता दो। जेल जाने और बम बनाने का काम अभी दूसरों पर ही छोड़ दो।'[७] मालवीय जी का यह आदेश द्विवेदी जी ने श्रद्धा समन्वित होकर गुरुमंत्र के रूप में स्वीकार कर लिया और अध्ययन में लग गये। मालवीय जी के प्रयत्न से यद्यपि द्विवेदी जी को जेल जाने से मुक्ति मिल गई तथापि सी० आई० डी० से नहीं। जब तक वे विश्वविद्यालय में रहे तब तक गुप्तचर विभाग की निगाह में रहे।

अंग्रेज सरकार के निर्णयानुसार चेशायर का नमक देश भर में प्रभूत मात्रा में बिक सके इसलिए स्वदेशी नमक पर अनावश्यक कर लगाया जा रहा था। गांधी ने इस बात को लेकर सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ दिया था। १२मार्च १९३० की सुबह गांधी जी ने साबरमती से अपने कतिपय साथियों को लेकर नमक कानून तोड़ने के लिए दाण्डी-यात्रा प्रारंभ की और ६ अप्रैल को वहाँ पहुँचकर नमक कानून का भंग किया। प्रस्तुत आंदोलन का देशव्यापी प्रभाव पड़ा।

इधर बनारस, हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों ने भी विद्रोह प्रदर्शित किया जिनमें द्विवेदी जी प्रमुख थे। किन्तु विश्वविद्यालय में रहकर नमक सत्याग्रह कैसे किया जाय, यह समस्या थी। उन्हें डर था मालवीय जी के जान जाने का।

इधर नमक सत्याग्रह करने की वे प्रतिज्ञा कर चुके थे । इस धर्म संकट से मध्यम मार्ग निकालते हुए उन्होंने कुछ समय पर्यन्त विश्वविद्यालय छोड़कर बिन्दकी जाने का निर्णय लिया । ऐसा करने पर वे गुप्तचर विभाग से भी बच सकते थे । मित्र-वृंद से मिलकर उन्होंने बिन्दकी से प्राय: दो मील के अंतर पर एक निर्जन स्थान में नमक बनाने की योजना निर्मित की । सोहनलाल जी के नृत्त्वं नेतृत्व में सभी मित्र नमक बनाने का पूरा सामान लेकर रात्रि में निकल पड़े । निर्धारित स्थान पर जाकर कड़ाही में नमक बनाने की संपूर्ण व्यवस्था की गई । लड़कों को विश्वास था कि पुलिस तो यहाँ आ ही नहीं सकती थी । अत: जैसे ही कड़ाही समुद्रफेन की तरह झाग से भर गई, लड़के भावावेश में आ गए और 'गांधी बाबा की जय' पुकार उठे । संयोग से वहाँ पुलिस आ ही पहुँची और सभी लड़कों को डंडे मार-मारकर भगाने लगी । लड़कों ने भी ईंट का जवाब पत्थर से देने का विचार किया किन्तु उनके नेता सोहनलाल ने बड़े दुखी स्वर में कहा, 'ऐसा न करना । बापू की आत्मा को कष्ट पहुंचेगा । ईंट का जवाब पत्थर से नहीं, प्रेम से देना है ।'[८] और हुआ भी यही । लड़के पुलिस के डंडे खाते रहे पर उन्होंने शांति से ही उसका प्रतिरोध किया । अहिंसात्मक ढंग से नमक बनाने का प्रसंग पूर्ण हुआ । लड़के घर आकर चुपचाप दर्द का अनुभव करते हुए सो गए । अहिंसावादी संयोजन में उन्हें सफलता प्राप्त हुई । वे पुन: बनारस पहुंच गये । गांधी जी की दांडी यात्रा के अवसर पर द्विवेदी जी लिखित कविता 'चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर' उस समय गली-गली में मुक्त गूंजा करती थी । उक्त प्रसंग से यह स्पष्ट है कि शनै: शनै: उनके मानस पर गांधीवादी अहिंसक नीतियों का स्थायी प्रभाव पड़ रहा था । पंडित मालवीय जी ने भी समय-समय पर उन्हें अहिंसावादी चिंतन की ओर अभिमुख किया । उन्होंने युवा कवि- हृदय में उठनेवाली उछाल एवं आवेगपूर्ण भाव तरंगों को संयमित करते हुए सागर की अतलवर्ती गहराई का-सा गाम्भीर्य लाने का उचित समयानुकूल यत्न किया । अतएव वे भड़कने की अपेक्षा अधिक महकने लगे ।

निष्कर्ष :

अद्यावधि किये गए विवरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि हमारे आलोच्य कवि के बाह्याभ्यंतर व्यक्तित्व में विभिन्न प्रवाह कार्यान्वित हुए हैं। यद्यपि उन्हें अपने पिता की ओर से जन-समाज के दु:ख-दर्द को सहृदयता के साथ समझने और यथासंभव तन-मन-धन से निस्वार्थ सेवा करते हुए उन्हें दूर करने का प्रयास करने की प्रेरणा मिली है, तथापि अधिकांश रूप से स्व० पं० मदनमोहन मालवीय जी एवं स्व० राष्ट्रपिता पू० महात्मा गांधी जी के प्रत्यक्ष संपर्क से उनके व्यक्तित्व में, उनके चिन्तन एवं व्यवहार में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। इनके पारस्परिक संसर्ग से कवि के व्यक्तित्व का मानो काया-कल्प ही हो गया है। वीर गणेशशंकर विद्यार्थी के क्रांतियुक्त तूफानी व्यक्तित्व का भी उन पर जादुई असर पड़ा था। राष्ट्र के लिए त्याग एवं बलिदान करने की बलवती भावना का उन्मेष उनमें जागृत हुआ था। ~~पं० मदनमोहन~~ उन्हें पूर्णतया अहिंसक एवं सर्जनात्मक चिन्तन करने के हेतु उत्प्रेरित करने का काम पं० मालवीय जी एवं गांधी जी ने किया था। इन दो महान युगनेताओं के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का पं० सोहनलाल जी के व्यक्तित्व पर जो अभूतपूर्व प्रभाव हुआ उसके परिणाम स्वरूप उनमें कतिपय विशिष्ट एवं असाधारण गुण उद्भूत हुए जो औसत मनुष्य में प्राय: परिलक्षित नहीं होते। इसके साथ उनके व्यक्तित्व के अन्य पक्ष यहाँ विचारणीय हैं।

शरीर-गठन एवं स्वास्थ्य :

उनका शारीरिक गठन निजी विशेषताओं से सम्पन्न है। औसत व्यक्ति से कुछ अधिक लम्बा उन्नत कद, गौर वर्ण, बलियों से समलंकृत प्रशस्त ललाट, लम्बी नुकीली नासिका, अनुकंपा भरित नेत्र, अधर-युगल पर पान की लालिमा, विद्युतछटा-सी कौंधती हुई मुस्कान तथा हृदय की तारल्यपूर्ण भाव-राशि को प्रतिबिंबित करने-वाला मुख-मण्डल। साथ ही कालिदास की 'दिलीप' विषयक उक्ति -

'व्यूढोरस्क: वृषभस्कन्ध: शालप्रांशु महाभुज:' को सार्थकता प्रदान करनेवाला सुविस्तृत वक्ष तथा विशाल स्कंध और आजानु भुजाएँ उनके शारीरिक गठन की दूसरी विशेषताएँ हैं। 'शरीरस्वास्थ्यं खलु धर्म साधनम्' की उक्ति का शब्दश: पालन करते हुए कवि ने अपने स्वास्थ्य की पूर्ण सजगता के साथ सुरक्षा की है। आज भी उनका स्वास्थ्य अपेक्षाकृत बहुत अच्छा है। उनसे प्रत्यक्ष भेंट करने पर अनुसंधित्सु को यह अनुभव हुआ कि उन्हें अपने स्वास्थ्य पर गौरव है और संयोग से कोई व्यक्ति उनके स्वास्थ्य के संदर्भ में पूछा करे तो उसका रहस्योद्घाटन करते हुए वे शरीर-स्वास्थ्य की सुरक्षा-हेतु विविध उपायों की सुदीर्घ चर्चा करने लग जाएंगे।

वस्त्र-परिधान :

'खादी-गीत' लिखनेवाले कवि ने खादी के वस्त्रों को किन भावनाओं एवं एकनिष्ठा के साथ आजीवन अपनाया उसे हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट कर चुके हैं। वे आमतौर पर स्वच्छ धुली हुई रजतवर्णी खादी की धोती, देशी बना हुआ मकरन्दवर्णी रेशमी खादी का कुर्ता तथा सिर पर धवल गांधी टोपी पहनते हैं। पांव में देशी चप्पल या कभी-कभी बूट पहनते हैं। विशिष्ट प्रसंग पर वे चूड़ीदार पाजामा तथा कुर्ते पर बादामी रंग की खादी की अचकन पहनते हैं। सर्दी के मौसम में गरम लंबा कोट भी पहनते हैं। हाथ में सुंदर बेंत भी प्रसंगवश रखते हैं किन्तु सिर में गांधी टोपी तो सदैव पहनते हैं।

जीवनक्रम :

कवि अपने दैनंदिन जीवनक्रम में प्राय: चुस्त नियमपालक के रूप में दृष्टिगत होते हैं। नियमितता उनके व्यक्तित्व की एक अनुपम विशेषता है। नित्यप्रति प्राय: चार बजे ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाना, शौचादि से निवृत्त होकर स्वयं चाय बनाकर पी लेना और तत्पश्चात काव्य-सृजन या साहित्य-लेखन का कार्यारंभ करना उनकी आदत-सी हो गई है। शारीरिक स्वास्थ्य को अधिक महत्व देनेवाले

कवि नियमित रूप से सुबह घूमने जाते हैं और सूर्योदय होते वापस चले आते हैं। पुन: प्राय: दो घण्टे तक लेखन-पत्राचार आदि करते रहते हैं। दस बजे तक में तो स्नान, पूजन तथा भोजनादि से निवृत्त होकर मित्रों से मिलने या उनके निस्वार्थ सहयोग के हेतु घर से निकल पड़ते हैं। इस कवि की कविताओं में जो ताजगी, स्फूर्ति एवं उदात्तता पायी जाती है, उनका रहस्य संभवत: उनका सृजन ब्रह्मबेला में होना भी कहा जा सकता है। उनके जलपान, भोजन, कपड़ों तथा निवास-स्थान सभी उनकी सुरुचिशीलता, व्यवस्थितता तथा सौन्दर्यप्रियता के परिचायक हैं। मित्रों, सम्बंधियों तथा अन्य व्यक्तियों पर लिखे उनके पत्रों में भी यही वैशिष्ट्य झलकता है। यह सब होते हुए भी कहीं बाह्याडंबर के दर्शन नहीं होते। वे जैसे हैं, जैसा चिन्तन करते हैं, वैसा ही दीखने का प्रयास करते हैं जो बाह्य-प्रदर्शन वाले आज के युग की तुलना में बहुत बड़ी सिद्धि मानी जा सकती है। आडंबर उनसे कोसों दूर भागता है।

स्वाभिमानी व्यक्तित्व :

किसी भी साहित्यकार का स्वमानप्रिय होना परम आवश्यक है। अपने निजी सिद्धान्तों एवं मान्यताओं का हनन वह किसी भी हालत में पसंद नहीं करता। वह तो मानव जाति के स्वाभिमान और कल्याण का संरक्षक है। यह साहित्यकार के जीवन की निधि है। यदि वह चंद रूपयों या कुछ क्षुद्र स्वार्थों की प्राप्ति के हेतु अपने स्वाभिमान को बेचने लगा तो समझिए उसी क्षण से उसका साहित्यकार मर गया। अपने उच्च आसन से वह च्युत हो गया। ऐसा साहित्यकार कभी किसी की खुशामत नहीं करता। हमारे आलोच्य कवि भी इसी प्रकार के स्वाभिमानी व्यक्तित्ववाले हैं। वे अपने सिद्धान्तों पर अटल रहकर निजी स्वार्थों का परित्याग करते हुए पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ दो-तीन प्रसंग संक्षेप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

(१) सर्वप्रथम राष्ट्रीय काव्य-कृति `भैरवी` के प्रकाशन के संदर्भ में प्रकाशक महोदय के तर्कों का प्रत्युत्तर देते हुए वे जो कहते हैं उसमें उनका स्वाभिमान ही तो प्रकट होता है।[९]

(२) पं० सोहनलाल जी के एक वकील मित्र श्री निरंकारदेव सेवक ने कानपुर के एक कवि-सम्मेलन में जो चाक्षुष प्रत्यक्ष अनुभव किया वह उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत किया जा रहा है। यथा:-`हिन्दी के बहुत- से कवि उसमें भाग लेने के लिए आये हुए थे। संयोजकों की ओर से कवियों के आदर सत्कार में कुछ उदासीनता दिखाई गई थी। बातचीत में किसी ने कुछ कह भी दिया। द्विवेदी जी इसे सहन न कर सके। उन्होंने कवि-सम्मेलन में जाने से इन्कार कर दिया और आर्थिक लाभ की चिन्ता किए बिना अपना सामान बांधकर वहां से उठकर चले आए। हम कुछ लोग उनके साथ थे। वह सारी रात हमें कानपुर में इधर-उधर घूमते बीती थी।[१०]

(३) स्वाभिमानी मनोवृत्ति के कारण वे आजीवन अयाचक व्रत का पूर्णतया पालन कर सके हैं। अपने हितचिंतक एवं घनिष्ठ मित्र के सम्मुख भी उन्होंने कभी भी अपनी कोई इच्छा या अपेक्षा व्यक्त नहीं की है। यहाँ तक कि स्व० जवाहरलाल नेहरू जी, स्व० लालबहादुर शास्त्री जी जैसे प्रधानमंत्रियों से भी निजी सम्बंधों का लाभ उठाने का कभी भी उन्होंने प्रयास नहीं किया है। अर्थात् उनसे कभी भी अपने लक्ष्य की पूर्ति की आशा-आकांक्षा नहीं रखी। इस मनोवृत्ति के कारण कभी-उनके प्रति लोगों में भ्रान्त धारणा भी उत्पन्न हो जाती है। इसका यह अर्थ न लिया जाय कि वे अहंकारी हैं। वे स्वाभिमानी होते हुए भी निराभिमानी हैं। सुसम्पन्न परिवार में जीवन-यापन करने पर भी किसी मित्र या छोटे-से छोटे सरल, निर्धन ग्रामीण व्यक्ति तक के अनुग्रह के वशीभूत होकर भरी दोपहरी में गांवों की पद-यात्रा करते हुए तथा उसके

प्रति हार्दिक प्रीतिपूर्ण व्यवहार करते हुए प्राय: देखे जा सकते हैं । अपनी इस लाक्षणिक विशेषता के कारण एक व्यक्ति के रूप में उनका स्थान बहुत ऊँचा उठ जाता है ।

(२) निर्भीकता :

स्वाभिमान एवं अयाचक वृत्ति के विशिष्ट लक्षणों के कारण उनमें एक प्रकार की निर्भीकता भी आ गई है । बड़े से बड़े व्यक्ति को भी वे नि:संकोच जो कहना चाहते हैं तपाक् से कह डालते हैं । मेरठ हिन्दी परिषद के अवसर पर आयोजित ------- एक कवि-सम्मेलन का प्रसंग इस संदर्भ में उल्लेखनीय है । `इसमें निराला, अज्ञेय, जैनेन्द्र, नगेन्द्र, कमला चौधरी, विद्यालंकार, नेमीचन्द्र जैन प्रभृति चोटी के साहित्यकार परिषद में उपस्थित थे । निराला जी अपनी मस्ती में एक के बाद एक सिगरेट सुलगाकर धुएं के बादल उडाते हुए प्रसन्न हो रहे थे । अचानक उन्होंने लम्बा कश खींचकर सन्निकट स्थित एक युवती के मुख पर धुएं की बौछार कर दी । युवती की उत्तेजना और बेचैनी देखकर सभी ने सोचा कि निराला जी को रोका जाय, पर किसकी हिम्मत थी कि उन्हें कुछ कहे । आखिर सोहनलाल जी अपने स्थान से चुपचाप उठे और बड़ी निर्भीकता से निराला जी के हाथ से सिगरेट लेकर मसलते हुए बुझाकर वापस अपने स्थान पर आकर बैठ गये । सबको भय था कि निराला जी अभी--- अभी बिखरेंगे । किन्तु वे एक फीकी मुस्कान के साथ खिसिया कर चुप बैठे रहे ।' [११]

इसके अतिरिक्त पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट विवाह के अवसर पर बड़े भाई की इच्छा के विरुद्ध खादी के वस्त्र-परिधान का अटल निर्णय भी उक्त निर्भीकता का परिचायक है ।

(३) निस्पृही मनोवृत्ति :

`भैरवी' और `वासवदत्ता' जैसी राष्ट्रीय-गरिमा युक्त पुस्तकों के प्रकाशन

के परिणाम स्वरूप सोहनलाल जी हिन्दी काव्य-जगत में अत्यधिक प्रसिद्ध हो चुके थे। उस समय के सर्वोच्च देव पुरस्कार की प्राप्ति के हेतु प्रकाशक ने उक्त पुस्तकों को संप्रेषित कर दिया था और उन्हें पुरस्कार मिलने की पूर्ण संभावना भी थी किन्तु स्वयं द्विवेदी जी ने स्व० पं० माखनलाल चतुर्वेदी की 'हिमकिरीटिनी' पुस्तक उसी पुरस्कार के निमित्त भेजी थी। अपने मित्र निरंकारदेव सेवक को इसका रहस्योद्घाटन करते हुए द्विवेदी जी ने जो लिखा था वह इस प्रकार है :-' देव पुरस्कार चतुर्वेदी जी को मिला। तुम्हें कदाचित मालूम हो कि मैंने ही उनकी रचनाएं छपवाईं, नामकरण किया तथा देव पुरस्कार में भिजवाईं। यों वर्मा जी('हिमकिरीटिनी' के प्रकाशक स्व० श्री सालिग्राम वर्मा) भेजते ही नहीं थे। ४४८ हिमकिरीटिनी को, ४४५ वासवदत्ता को ४४२ भैरवी को- इस प्रकार अंक प्रकाशित हुए हैं। जरा-सी कन्वेसिंग से मेरा नाम आ सकता था। पर वैसा करना मैंने उचित नहीं माना। जो निर्णय हुआ है उससे तुम्हें सन्तोष हुआ होगा।'[१२]

द्विवेदी जी की निस्पृही और त्यागमयी मनोवृत्ति के और भी कई उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सर्वसम्मति से बिन्दकी नगरपालिका के अध्यक्ष पद के लिए द्विवेदी जी का निर्वाचन-प्रसंग और कुछ समय पश्चात् उस पद से स्वयं त्यागपत्र देकर उससे मुक्त हो जाना उनकी निस्पृही मनोवृत्ति का सशक्त प्रमाण है। अपने मित्र श्री हरिप्रसाद गुप्त पर लिखे पत्र से द्विवेदी जी की मन:-स्थिति का अंदाज लग सकता है। 'जो स्थिति देखता हूं, सदस्यों की, मैं इस दलदल में न रहूँगा। मेरा त्यागपत्र स्वीकार कराओ, निम्न पंक्ति पढ़ो, समझो और करो :-'

> 'जो चादर सुरनर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीन चदरिया
> दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीन चदरिया ।।'[१३]

आज के युग में जब सभी धनलोलुप होकर सत्ता एवं सम्मान की प्राप्ति के लिए पूर्वनियोजित एकाधिक कुत्सित प्रयोग करनेवाले स्वार्थी लोग पाये जाते हैं

तब द्विवेदी जी अपनी निस्पृही, निर्लोभी एवं त्यागमयी मनोवृत्ति से एक असाधारण प्रतिभा सम्पन्न सामाजिक व्यक्ति के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। स्वतंत्रता का सच्चा सेनानी ही ऐसा त्याग दिखा सकता है। निस्पृह एवं स्वाभिमानी व्यक्ति में स्पष्टवादिता का होना सहज संभाव्य है। द्विवेदी जी भी स्पष्टवादी हैं। आज भी कभी-कभी वे अपनी जनपदीय बोली में 'सुनौ हो, चहै तुमका नीक लागै, औ चहै न लागै, हम अइस न करब'[१४] इस प्रकार बोलते सुने जा सकते हैं।

(४) विनोदप्रिय एवं मस्तमौला :

स्वाभिमानी होने के कारण गुरु-गंभीर प्रकृतिवाले द्विवेदी जी अपनी मित्र-मंडली में सहज, विनोदप्रिय और मस्तमौला के रूप में पाये जाते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

श्री यशपाल जैन 'मधुकर' सम्पादन के सिलसिले में टीकमगढ़ में रहते थे। किसी समारोह से लौटते हुए वे घर जा रहे थे कि रास्ते में द्विवेदी जी मिल गए। वे भी टीकमगढ़ जाना चाहते थे। दोनों ललितपुर स्टेशन पहुंचे। वहाँ से बस में यात्रा करनी थी। कुछ घण्टे रुकना था। ललितपुर म्युनिसिपैलिटी के तत्कालीन अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तम चौबे जो यशपाल जी के मित्र थे, के यहाँ दोनों पहुंचे। जलपान के उपरान्त वहाँ उपस्थित सभी नगरजनों के अनुरोध से वशीभूत होकर द्विवेदी जी को अपनी कुछ कविताएँ सुनानी पड़ीं। काव्य की रसानुभूति में सब विभोर थे। इतने में मकान के निकट बस आयी दोनों उठ रहे थे कि पुरुषोत्तम जी ने यह कहते हुए 'बस आपको लिए बिना नहीं जा सकती', आश्वस्त कर दिया और कविता-पाठ जारी रखने का साग्रह अनुरोध किया। इधर सभी काव्य-रस में निमग्न थे और उधर ड्रायवर हार्न- पर-हार्न बजाकर अपना क्रोध व्यक्त कर रहा था। लगभग पौन घंटे की देरी के पश्चात् जब काव्य-पाठ समाप्त कर दोनों मित्र ड्रायवर की निकटवर्ती आरक्षित सीटों पर

बैठे तब इंजन को चालू करते-करते ड्रायवर उन दोनों पर बरस पड़ा । उसके क्रोध की सीमा नहीं थी । यशपाल जी मन ही मन झुंझला रहे थे कि द्विवेदी जी ने स्वयं मुस्कराते हुए, टोकरी में से एक संतरा निकाल कर उसकी फांकें देते हुए ड्रायवर से बड़े शान्त भाव से कहा, `लो, पहले इसे खा लो, फिर जो जी में आवे कह लेना ।` द्विवेदी जी की शांत और मधुर वाणी ने सारे वातावरण में मिठास भर दी । चालक का क्रोध क्षणभर में अदृश्य हो गया । यशपाल जी के शब्दों में कहें तो, `मैंने बहुत से प्रसंगों में देखा, सोहनलाल जी की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि भारी से भारी उत्तेजना मिलने पर भी वह अपना मानसिक संतुलन बनाए रखते हैं । वह सहज ही दूसरे की कठिनाई को देख लेते हैं और जो दूसरों की कठिनाई को समझ लेता है, वह गुस्सा नहीं कर सकता, क्षमाशील ही हो सकता है ।`१५

अपनी अंतरंग मित्र-मंडली के बीच द्विवेदी जी के विनोदपूर्ण एवं निर्दोष `रिमार्क्स` बड़े चुटीले तथा कसावपूर्ण होते हैं । एक बार अखिल भारतीय बाल साहित्यकार संघ के मंत्री श्री चन्द्रपाल सिंह यादव संघीय अधिवेशन के उपलक्ष्य में कुछ आवश्यक विचार-विमर्श करने के निमित्त संघ के अध्यक्ष द्विवेदी जी के पास आये थे । साथ में एक अन्य बाल-साहित्यकार भी थे जिनकी आदत हर नये व्यक्ति से मिलने पर उस पर अपना प्रभाव जमाने की थी । द्विवेदी जी पर भी उन्होंने अपना प्रभाव जमाने के उद्देश्य से लंबी-चौड़ी बातें करने का प्रयास किया । द्विवेदी जी ने भी हर बात में उन पर व्यंग्य एवं कटाक्षों के शर बरसाना प्रारंभ किया । इसके लिए छोटा-सा प्रसंग द्रष्टव्य है - बिन्दकी के प्रधानाध्यापक श्री उत्तम जी द्विवेदी जी के यहां आये हुए थे । उनके आग्रह और द्विवेदीजी की अनुमति से श्री चन्द्रपाल सिंह यादव और बाल-साहित्यकार उनके घर रात्रि-भोजन तथा निवास के लिए गये थे । दूसरे दिन प्रात: द्विवेदी जी के जीने से चढ़कर तीनों व्यक्ति ऊपर पहुँचे । द्विवेदी जी बैठकवाले कमरे में नहीं थे । शायद अंदर की खुली छत पर थे । `जीने के ऊपर से

ही उत्तम जी ने जोर से आवाज दी : `चाचा ! हम लोग आ गये । क्या आप अन्दर हैं ?` अन्दर से द्विवेदी जी की आवाज आई : `हाँ, मैं अन्दर आंगन में हूँ । पर तुम कौन हो ?`

उत्तम जी ने उत्तर दिया : `चाचा, मैं हूं उत्तम ।` तभी अन्दर से द्विवेदी जी की पुन: आवाज आई : `अच्छा, तुम हो उत्तम । तो मध्यम और अधम को कहां छोड़ आये ?` यह सुनते ही हम तीनों एक क्षण के लिए ठिठक गए । कौन मध्यम ? और कौन अधम ? कौन बोले और क्या बोले ?

द्विवेदी जी की उत्तम, मध्यम और अधमवाली बात बड़ी मजेदार और हास्योत्पादक थी, इसमें सन्देह नहीं । बड़ी ही अलंकारपूर्ण और शिष्ट हास्य से लबालब ।

द्विवेदी जी बड़े मस्तमौला व्यक्ति हैं । प्राय: वे अपनी मस्ती में लीन रहते हैं । इसके आगे सारे विश्व के प्रलोभन व्यर्थ हैं । बड़े-बड़े व्यक्तियों के, यहाँ तक कि दिल्ली सरकार का निमंत्रण मिलने पर भी इच्छा हो तो चले जाएंगे अन्यथा यह कहकर टाल देंगे कि -`जो मनु होई तो जाब, कोहू के नौकर नंइ हांहिंन`। वैसे वे छोटे-बड़े सभी का सम्मान करते हैं । मौज(Mood) में हों तो वे एक गरीब बालक तक के निमंत्रण पर सोल्लास चल पड़ेंगे । उस समय उन्हें पैदल यात्रा करने में तनिक भी फिफक नहीं होगी किन्तु मौज न हो तो मिनिस्टर तक के निमंत्रण की परवाह न करेंगे । हम उन्हें प्रार्थनाएँ करते रहेंगे वे हमें फिड़कियाँ सुनाते रहेंगे ।

(५) निर्लोभी एवं औदार्यपूर्ण व्यक्तित्व :

बाल्यकाल से ही द्विवेदी जी में धनलोलुपता का अभाव पाया गया है । सम्पन्न परिवार के होने के कारण विद्याध्ययन करते समय बड़े भाई की ओर से

उन्हें प्रतिमास १५० रु० मिलते थे जबकि औसत विद्यार्थी प्रतिमास ४०-५० रु० पाता था । आवश्यकता पड़ने पर उनके सहाध्यायी मित्रों में से जो जितने रुपये माँगता, उतने रुपये द्विवेदी जी देते रहते थे किन्तु वे उधार के रुपये माँगने की कभी कोशिश नहीं करते थे । संभवत: उनके कई रुपये उनके मित्रों के पास पड़े रहे होंगे जिनका द्विवेदी जी को कभी कोई गम नहीं रहा ।

खिलाने-पिलाने के मामले में तो द्विवेदी जी सिद्धहस्त हैं । 'अतिथि देवो भव' की उक्ति की सार्थकता उनके प्रत्येक अतिथि के प्रति अपने भावपूर्ण आतिथ्य में परिलक्षित होती है । अनुसंधित्सु का भी प्रत्यक्ष अनुभव इसका प्रमाण है । प्रत्येक छोटे-बड़े मेहमान की पूर्ण आत्मीयता के साथ खातिरदारी करने में उन्हें एक अद्भुत आनंद की अनुभूति होती है । अर्थ-व्यय का ख़याल किये बिना वे बड़ी तन्मयता और आत्मीयता से आतिथ्य-सं सत्कार करने में व्यस्त और मस्त रहे रहते रहे हैं ।

विविध परीक्षाएँ पास करके नौकरी या धंधे के माध्यम से आजीवन धनोपार्जन करते रहना ही बहुधा विद्यार्थियों का जीवन लक्ष्य होता है किन्तु द्विवेदी जी ने धनोपार्जन को अपना जीवन-लक्ष्य कभी नहीं माना । साहित्य-साधना करते हुए सरस्वती की उपासना करते रहना ही उनका जीवन लक्ष्य शिक्षाकाल से रहा । आजीवन इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए वे अनवरत प्रयत्नशील रहे।

संभवत: इसी कारण काव्य जैसे सरस्वती के प्रसाद की उन्होंने धन से संतुलना कभी नहीं की । इसीलिए तो उन्होंने काव्य- को कभी भी प्रकाशकों के हाथ नहीं बेचा । आधुनिक युग के एकाधिक लब्धप्रतिष्ठ एवं उदीयमान कवियों ने अपनी प्रतिभा को प्रकारांतर से शासन के हाथों बेच दिया है । फलत: उनकी प्रतिभा सीमित और कुंठित हो गई है । अनेक प्रलोभनों एवं सम्बंधजन्य सुविधाओं के होते हुए भी द्विवेदी जी ने किसी भी प्रकार की नौकरी करना स्वीकार नहीं

किया है । 'निरंकुशा: कवय:' की उक्ति की शत-प्रतिशत सार्थकता द्विवेदी जी में दृष्टिगत होती है । अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उन्होंने धन के तराजू में कभी भी नहीं तौला । धन के कुख्यात लोभ से वे बाल-बाल बचे रहे हैं । ऐसा ही निर्लोभी व्यक्ति चाहे कवि हो या लेखक सच्चा मार्गदर्शन देते हुए जन-समाज की कल्याण-साधना कर सकता है ।

(६) साहजिकता :

सहज भाव द्विवेदी के मूल मन्त्रों में से है । अपने जीवन का प्रत्येक कार्य वे साहजिकता से करना पसंद करते हैं । कभी भी आडंबर या बनावटीपन उन्हें पसंद नहीं । 'फार्मेलिटी' जैसी कोई बात उनके जीवन में कभी पायी नहीं जाती । तभी तो उनकी वाणी एवं व्यवहार में सामंजस्य परिलक्षित होता है । जैसा वे चिन्तन चिन्तन करते हैं प्राय: वैसा ही आचरण भी करने की भरसक कोशिश करते हैं । दूसरों से भी वे बहुधा ऐसी ही अपेक्षा रखते हैं । इसीलिए वाणी का व्यभिचार करनेवाले लोग उनकी साहजिकता को पसंद नहीं करते हैं । वे उन्हें कभी- कभी जिद्दी या Unflexible मान लेते हैं । आज के युग में चलती का नाम गाड़ी करनेवाले, सिद्धान्त रहित चिन्तन करनेवाले तथा अपना उल्लू सीधा करने की स्वार्थान्ध नीति रखनेवाले व्यक्तियों की जमात में ये फिट नहीं हो सकते हैं । वे गांधीवादी चिन्तन एवं व्यवहार में मानते हैं, अत: सीमित साधन के सुन्दरतम उपयोग के अभ्यस्त हैं । तदर्थ वे व्यर्थ की बकवास, आलस्य और साधनों का दुरुपयोग या अनुपयोग पसंद नहीं करते । यदि कोई सिद्धान्त प्रिय या अपने प्रति सच्चा रहनेवाला व्यक्ति हो तो द्विवेदी जी उसकी अवश्य सराहना करेंगे । साहजिक रूप से प्रसन्न वदन रहनेवाले व्यक्ति द्विवेदी जी को बहुत पसंद है । उनकी साहजिकता एवं आडम्बर शून्य मनोवृत्ति के परिणाम स्वरूप उनके काव्य में भी सरलता एवं सहजता है । इस सहजता के कारण वे आत्म-प्रदर्शन से दूर रहते हैं जैसा परवर्ती विवेचन से प्रकट है । आत्मश्लाघा की निर्बलता अनेक

व्यक्तियों में दृष्टिगोचर होती है । सामान्यत: हिन्दी का प्राय: प्रत्येक मध्ययुगीन कवि आत्मश्लाघा से दूर रहा है । अपने आराध्य की आराधना में लीन भक्त कवि यशोलिप्सा का कभी शिकार नहीं हुआ । आज के युग में आत्म-श्लाघा और आत्म-प्रदर्शन आवश्यक समझा जाने लगा । प्रत्येक कवि या लेखक जो जितना नहीं है उससे अधिक दिखाने का और इस तरह यशोलिप्सा का बुरी तरह शिकार होता जा रहा है । द्विवेदी जी बहुधा इस रोग के शिकार नहीं हुए हैं । वे अपने प्रति सच्चे रहकर अनवरत कर्म-साधना में मानते रहे हैं । प्रतीत होता है कि श्रीमद् भगवद्गीता के कर्मयोग के सिद्धान्त को भलीभांति उन्होंने जीवन में उतारने का प्रयास किया है । अपने कार्य में ही रत रहनेवाले द्विवेदी जी कभी किसी वाद या गुटबंदी की परिसीमा में आबद्ध नहीं हुए । आत्म-प्रदर्शन के अभाव को इंगित करने के लिए सन् १९४३ ई० में कलकत्ता में आयोजित कवि-सम्मेलन का प्रसंग उल्लेखनीय है ।—

उक्त कवि सम्मेलन में ६०-७० लब्धप्रतिष्ठ कवियों को निमंत्रित किया गया था जिनमें द्विवेदी जी भी थे । उन दिनों कलकत्ते में ऐसी भुखमरी का तांडव-नृत्य हो रहा था कि जो भी उसे देखता उसका दिल द्रवित हो जाता था । द्विवेदी जी ने संयोजकों को तार दिया था : 'प्रतिदिन कलकत्ते में लोग भूख से मर रहे हैं । इससे आपका मन द्रवित हो जाना चाहिए । आप कवि सम्मेलन स्थगित कर दें ।' द्विवेदी जी स्वयं तो कवि-सम्मेलन में नहीं गये और प्रयाग में ही पीड़ितों की आर्थिक सहायता के निमित्त चन्दा एकत्रित कर रहे थे । कवि-सम्मेलन के कुछ दिन पश्चात् अपनी अनुपस्थिति का कारण बताते हुए उन्होंने अपने मित्र निरंकारदेव 'रसिक' को पत्र में लिखा था, 'किन्तु आपको मालूम होना चाहिए कि जब आप लोग कविता पढ़ रहे थे मैं प्रयाग में पीड़ितों की आर्थिक सहायता के लिए चन्दा एकत्रित कर रहा था, जो भेजा ब जा चुका है ।---मैं तो यह लिखते हुए भी संकोच करता हूं कि कहीं इसे भी तुम विज्ञापन न समझ बैठो ।'[१६]

७) शिक्षा-प्रेमी एवं समाज-सेवक के रूप में :

शिक्षा प्राप्ति का अधुनातम दृष्टिकोण सामान्यत: धनोपार्जन माना जा रहा है । सम्प्रति धन को ही केन्द्र में रखकर विद्याध्ययन किया जाता है । द्विवेदी जी प्रारंभ से ही इसके विरोधी रहे । एतदर्थ अपने अध्ययन काल में ही सहाध्यायी मित्रों से वे प्राय: इस बात पर विवाद किया करते थे । साहित्य साधना में ही द्विवेदी जी रत रहे । अर्थात् आर्जविन निष्काम भाव से सरस्वती की उपासना ही करते रहे । ऐसे शिक्षा-प्रेमी कवि अग्रज बंधु मोहनलाल जी के निधन पर जब पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वहण करने के उद्देश्य से अनेक- उनका बिंदकी में रहना निश्चित हुआ तब साथ ही बिन्दकी जैसे बड़े परिवार की कल्याण-कामना से उन्होंने विविध सार्वजनिक कार्यों में भी रुचि लेना प्रारंभ किया । एक ओर शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने प्रयास किया तो दूसरी ओर सामाजिक सेवा कार्यों में भी दिलचस्पी ली ।

बालकों के प्रति निर्दोष भाव से प्यार करने वाले वात्सल्यमूर्ति द्विवेदी जी ने बिंदकी में सन् १९६२ ई० में 'शिशु भारती' नामक बाल-संस्था का निर्माण किया और उसके अध्यक्ष के रूप में निस्वार्थ सेवा प्रदान करते हुए इस छोटी सी संस्था के उन्नयन एवं विकास के हेतु बड़े मनोयोग से कार्य करते रहे । आज तो यह छोटी-संस्था हाईस्कूल एवं इण्टर कालिज भी हो गई है । उन्हीं के कुशल निर्देशन में नेहरू कालिज डिग्री कालिज में परिवर्तित हुआ है । इन संस्थाओं की प्रगति का संकेत करते हुए द्विवेदी जी ने अपने मित्र सेवक महोदय को जो लिखा था वह उन्हीं के शब्दों में इस तरह है - 'आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि शिशु-भारती राजकीय संस्था बनने जा रही है । बालिका विद्यालय हाईस्कूल हो गया है । एक दो वर्षों में इण्टर कालिज हो जाएगा । नेहरू कालिज को डिग्री कालिज बनाने के प्रयत्न में हूं ।'[१७] इस तरह बिंदकी जैसे छोटे से कस्बे में बालमंदिर से लेकर कालेज तक के उच्चस्तरीय विद्याध्ययन की सुविधा द्विवेदी जी के कुशल

निर्देशन एवं शिक्षा-प्रेम के कारण सम्पन्न हुई ।

साथ ही सार्वजनिक कार्यों में प्रारंभ से ही रुचि होने के कारण तथा जिला परिषद फतेहपुर में ८ वर्षों तक निर्वाचित सदस्य के रूप में कार्यानुभव प्राप्त करने पर उन्होंने बिंदकी का कायाकल्प करने के उद्देश्य से बिन्दकी नगर-पालिका की अयाचित अध्यक्षता स्वीकार कर ली । उन्होंने अपने मित्र से परिस्थिति का संक्षिप्त विवरण देते हुए लिखा था : ` २० मार्च को सर्व-सम्मति से नगरपालिका के अध्यक्ष पद पर मेरा निर्वाचन हो गया । ---- सभी आकस्मिक रूप से । अप्रयास । ---- मैं व्यस्त तो सचमुच बहुत हो गया हूं । जैसा पहले कभी जीवन में नहीं रहा । ----- दो महीने तो ऐसे बीत गये जैसे दो दिन हों। ----- कई महत्वपूर्ण योजनाएं हैं, जिन्हें कार्यान्वित करने में लगा हूँ । नगर-पालिका का कायाकल्प करना है ।`[१८]

सोत्साह एवं निष्काम कार्य करते रहने की मनोवृत्ति नगरपालिका के अन्य सदस्यों को शायद पसंद न आई हो क्योंकि अपने स्थान पर रहकर वे किसी भी तरह अपना उल्लू सीधा करने की मनोवृत्ति नहीं रखते थे । वे दल-दल में फंसे अनेक युक्ति-प्रयुक्तियाँ आजमाते रहते थे । वे द्विवेदी जी के कार्य में अनावश्यक विघ्न उपस्थित करने का प्रयास करते थे जैसा कि आजकल सर्वत्र देखा जाता है । निष्काम और निस्पृह द्विवेदी जी को यह पसंद न आया । उन्होंने शीघ्र ही मुक्ति के लिए अपना त्यागपत्र स्वीकार करा लिया जिसका विवरण हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर आये हैं । इस कार्यभार से मुक्ति की शांति का अनुभव उन्होंने किस तरह किया यह उन्हीं के शब्दों में देखें :`आज अध्यक्ष पद के कार्यभार से निवृत्त हो गया हूँ । बड़ी राहत मिली । ---- अब इत्मीनान से जिन्दगी बीतेगी ।[१९] ऐसे निष्काम कर्मयोगी के लिए यह कहना कि `ज्यों की त्यों धर दीन चदरिया` सर्वथा उचित है ।---

सम्पादक के रूप में :

द्विवेदी जी ने काव्य-सर्जन के अतिरिक्त अपने राष्ट्रीय एवं बाल-मानस परक अपने विचारों के सम्यक् प्रस्तुतीकरण के माध्यम के रूप में सम्पादन कार्य भी सुचारु-रूप से संपन्न किया है । उन्होंने लखनऊ से प्रकाशित सर्वप्रथम दैनिक 'अधिकार' का संपादन कार्य संभाला । सन् १९३८ से १९४४ ई० तक के छ: वर्षों काल तक वे बड़ी सफलता से सम्पादन कार्य करते रहे । भारतीय जन-समाज को जागृत करते हुए स्वतंत्रता-प्राप्ति के अपने अधिकार के लिए सदैव तैयार करने का भगीरथ कार्य वे 'अधिकार' के माध्यम से करते रहे ।

'बाल-सखा' इंडियन प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित बाल-साहित्य की प्रमुख पत्रिका है । बाल-मानस के विशेषज्ञ और बालक जैसी निर्दोषता और सरलता लेकर बाल-साहित्य का निर्माण करनेवाले बाल-साहित्य के जनक और पोषक सोहनलाल जी द्विवेदी 'बाल-सखा' के सम्पादक के रूप में सन् १९५७ से १९६८ ई० तक अर्थात् ग्यारह वर्षों के दीर्घकालीन समय तक कार्य करते रहे । अपनी रुचि के क्षेत्रों में सम्पादन कार्य करने का सुअवसर उन्हें प्राप्त होने पर वे इसमें पूर्णतया सफलता प्राप्त कर सके । उनकी सम्पादन कला और एतद् विषयक योग्यता पर आगामी अध्याय में विचार-विमर्श किया जायेगा । अत: यहाँ उनका उल्लेख ही पर्याप्त होगा ।

इन दो पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त द्विवेदी जी ने महात्मा गांधी के हीरक जयन्ती समारोह के सुअवसर पर सन् १९४४ ई० में 'गांधी अभिनंदन ग्रंथ' का सफल संपादन किया जिसके संरक्षक श्री घनश्यामदास बिड़ला रहे । विभिन्न भाषाओं में बापू के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विभिन्न कवियों ने जो समयोचित श्रद्धांजलियाँ अर्पित की थीं उनको उक्त अभिनंदन ग्रंथ में संकलित किया गया था । स्वयं गांधी जी ने उक्त ग्रंथ के सम्पादन कार्य की सराहना की थी ।[20] सन् १९६९ ई० में गांधी जन्म शताब्दि समिति, उ०प्र० ~~सन् १९६९ ई० में~~ की ओर से पुन: उसका ~~सन् १९६९ ई०~~

गांधी जन्म-शताब्दी के शुभ-अवसर पर श्री द्विवेदी जी ने 'गांधी-शतदल' नामक ग्रंथ का संपादन किया जिसमें गांधी जी पर चुनी हुई १०० श्रेष्ठ कविताओं को संकलित किया गया। सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की ओर से उसे प्रकाशित भी किया गया।

इस तरह गांधी जी के परम उपासक एवं राष्ट्र के अनन्य भक्त-कवि ने गांधी की प्रशस्ति में अमूल्य ग्रंथों का सम्पादन कार्य करके राष्ट्रीय जन-नेता के प्रति सच्चे अर्थों में श्रद्धांजलि अर्पित की है। इन दो ग्रंथों के संपादकत्व पर विशेष आगामी अध्याय में कहा जायेगा।--- अस्तु

बाल-कवि के रूप में :

बच्चों के लिए कविता लिखना बायें हाथ का खेल है। उसमें कोई साधना की या दिल-दिमाग को कसने की बात नहीं। कलम उठायी और जब चाहा, जैसे चाहा, कविता लिख डाली। यह धारणा सामान्यत: प्रत्येक कवि की होती है। किन्तु स्थिति कुछ भिन्न है। वस्तुत: बच्चों के लिए कविता लिखना उतना आसान नहीं जितना लोग समझते रहते हैं। सामान्यत: बच्चों के लिए कविता लिखने में हिंदी के एकाधिक कवि अपनी हेठी समझते हैं। किन्तु 'सूर' आदि अष्टछापी कवियों ने तो भगवान कृष्ण की बाल-लीलाओं पर ही कविताएं लिखकर विश्व-साहित्य में अपना अन्यतम स्थान निर्धारित कर दिया है स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी बाल-साहित्य का सृजन कर दिव्य सुख एवं संतोष की अनुभूति की थी। जब तक सर्जक-कवि बालक के अंतर्मन में उतरकर, उसके सहज स्वभाव से तादात्म्य स्थापित नहीं करता तब तक वह सच्ची बाल-कविता नहीं दे पाता। कविता हाथ में आते ही बालक प्रफुल्लित हो जाय, कवितामय हो जाय और खाना-पीना सब छोड़कर उसे ही गुनगुनाते लग जाय तो समझना चाहिए कि सर्जक एक सफल बाल-कवि है। बाल-साहित्य लिखने की कठिनाई के

संदर्भ में पं० भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने लिखा है : `बाल-साहित्य लिखना बड़ा ही कठिन कार्य है । भाषा क्लिष्ट हो जाय तो लेखक को अपनी कुर्सी छोड़नी पड़े । भावों में स्वाभाविक सारल्य न हो -अभिव्यंजना में भोलापन न झलक पड़े- तो लेखक केवल कलाकार ही नहीं घसियारा बन जायगा । इन दोनों गुणों में पारंगत होने पर भी यदि कथन में नयी पौध के नवनिर्माण की भावना न हुई तो भी लेखक का प्रयास सर्वथा सफल और चिरस्थायी न होकर कालान्तर में तीन कौड़ी का बन जाता है ।`[२१] पं० सोहनलाल द्विवेदी ने उक्त-कठिनाइयों से ऊपर उठकर सफल बाल-कविताओं का सर्जन किया है । वे बच्चों के कवि ही नहीं, महाकवि भी हैं । उन्होंने बाल-गीतों पर दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं किंतु बाल-कवि द्विवेदी जी की दक्षता एवं कला-मर्मज्ञता के संदर्भ में आगामी अध्याय में सविस्तर विचार-विमर्श किया जानेवाला है । अतः यहाँ इतना ही उल्लेख करना पर्याप्त होगा ।---

भारतीय संस्कृति के उपासक :

यह सही है कि पं० सोहनलाल जी द्विवेदी के काव्य का मूल स्वर राष्ट्रीय है । देश का राष्ट्रीय -आंदोलन कवि के काव्य का उपजीव्य है और राष्ट्रीय -कविताएँ ही उनकी कीर्ति का मेरुदण्ड है । तथापि राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध करने के लिए प्राचीन भारतीय-संस्कृति की गौरव गाथा युक्त मार्मिक प्रसंगों का यथोचित उद्घाटन भी परम आवश्यक रहता है । इस उद्देश्य की पूर्ति करने के निमित्त द्विवेदी जी ने `वासवदत्ता`, `कुणाल`, `विषपान`, प्रभृति ऐसे काव्य-ग्रंथों का निर्माण किया जिनकी `सांस्कृतिक-काव्य` की परिधि में परिगणना की जाती है । कवि को अतीत भारतीय संस्कृति के प्रति विशुद्ध अनुराग है । प्राचीनकालीन ऐतिहासिक कथानकों एवं उदात्त चरित्रों के प्रेरणा-दायी घटना-प्रसंगों का युगीन परिस्थितियों के परिवेश में उद्घाटन करते हुए जन-मानस को उदात्त चरित्रवान तथा राष्ट्र के लिए त्याग और बलिदान देने

की पवित्र भावना उत्पन्न कराने का वे सफल प्रयास करते दृष्टिगत होते हैं। इस तरह उनकी ये सांस्कृतिक काव्य-कृतियाँ राष्ट्र के उत्थान और स्वाधीनता प्राप्ति के उदात्त लक्ष्य की पूर्ति में सहाय सिद्ध होती हैं। कवि की उक्त कृतियों की विशद व्याख्या आगामी अध्याय में की जायेगी उस समय भारतीय संस्कृति पर भी विचार-विमर्श किया जायेगा। यहाँ इतना कहना उचित होगा कि भारतीयता द्विवेदी जी की बहुत बड़ी विशेषता है। भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र 'त्यागमय उपभोग' उनमें बड़ी खूबी के साथ संगुंफित है।

राष्ट्रीय जन-जागरण के सेनानी :

राष्ट्रीय मंच पर राजनीतिक जन-जागरण गांधीयुग की सर्वोत्तम विशेषता है। सन् १९२०-२१ से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक का युग जिसे गांधीयुग कहते हैं समूचे देश के मानसिक आलोड़न -विलोडन का युग रहा है। स्वाधीनता की लक्ष्यपूर्ति के हेतु प्रस्तुत युग में अनवरत संघर्ष और देश के लिए मर मिटने की भावना दृष्टिगत होती है। द्विवेदी जी गांधीयुग के सिरमौर कवि हैं। उनकी रचनाओं में भी लक्ष्य प्राप्ति के लिए अनवरत संघर्ष और मर मिटने की अदम्य आकांक्षा दृष्टिगत होती है। उनकी प्राय: सभी राष्ट्रीय कविताएँ जन-जागरण का शंखनाद करती हुई सी प्रतीत होती हैं। अपने युग में देश की शायद ऐसी कोई भी पत्रिका नहीं थी जिसमें द्विवेदी जी की राष्ट्रीय रचनाएँ ससम्मान प्रकाशित न होती हों। कोई कवि-सम्मेलन ऐसा नहीं होता था जिसमें द्विवेदी जी की 'भैरवी' न गूंजती हो। उनकी प्रेरक रचनाएं देश के कोटि-कोटि तरुणों को फकझोर कर बलिपथ पर सोत्साह अग्रसर होने का निमंत्रण देती थीं। जैसा कि पहले बता चुके हैं उनका काव्य सर्जन 'यशसेर्थकृते' के प्रयोजन से कभी भी प्रेरित नहीं हुआ। मृतप्राय भारतीय राष्ट्र को अनुप्राणित करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य रहा है। नि:सन्देह उनके कवि ने सदैव स्वयं स्वतंत्र एवं जागृत रहकर परतंत्र देश में स्वतंत्रता के गीत बड़ी निर्भीकता पूर्वक गाये हैं। एक बात यहाँ अवश्य कहनी चाहिए कि जो कवि अपने निजी जीवन में प्रकृतितया स्वतंत्र नहीं होता, वह सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय स्वातंत्र्य का उपासक नहीं बन सकता। इस दृष्टिकोण से द्विवेदी जी

के जीवन को परखने पर वे शतश: खरे उतरते हैं । बड़े से बड़े प्रलोभन ने उनके कवि को राष्ट्रीय जन-जागरण के अपने कर्तव्य से कभी भी च्युत नहीं किया । उनकी लेखनी और वाणी प्रबल झंझावातों में भी निर्बन्ध रही । कवि की राष्ट्रीय कृतियों पर आगामी अध्याय में विशद विवेचन तो किया ही जाएगा किन्तु यहाँ इतना अवश्य कह देना उचित होगा कि कवि स्वतंत्रता एवं समूचे राष्ट्र को जगाते और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु सदैव जूझने के लिए 'उत्तिष्ठ कौन्तेय' वाली अदम्य भावना को लेकर काव्य-सर्जना करते रहे । स्वातंत्र्य - प्राप्ति के पश्चात भी एक जागरूक कवि के रूप में जनता एवं शासक वर्ग को यथोचित मार्गदर्शन देते रहे । विभिन्न कवि-सम्मेलनों में कविता-पाठ करने की अपनी अभूतपूर्व और प्रभावोत्पादक विशिष्ट शैली के कारण वे जन-समाज को भाव-विभोर करते हुए अपनी ओर बलात् खींच लेते थे । अपनी कविता के अमूर्त भावों को मूर्तिमंत करते हुए वे घंटों तक जन-सम्प्रदाय को मंत्रमुग्ध कर देते थे । इस तरह वे जनता में दीर्घकाल तक अनवरत चेतना उद्बुद्ध करने का भगीरथ प्रयास करते रहे ।

काव्य-यात्रा के पड़ाव :

पंडित सोहनलाल द्विवेदी के काव्य का अनुशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि उनकी काव्य-यात्रा दीर्घकालीन है । सन् १९२०-२१ से प्रारंभ होने-वाली उनकी काव्य-यात्रा विविध उतार-चढ़ाव के साथ अद्यावधि अर्थात् प्राय: ६० वर्षों की दीर्घ कालावधि पर्यन्त चलती रही है । इस लम्बी कालावधि में आधुनिक हिन्दी काव्य की विकास रेखा में छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता आदि अनेक वादों की छाया प्रतिबिम्बित हुई है । किन्तु हमारा आलोच्य कवि इन आंदोलनों का अनुगामी न होकर राष्ट्रीय चेतना की भाव-धारा से ही प्राय: जुड़ा रहा है और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य की साधना में संलग्न रहा । जिसकी युगीन गतिविधियों का विवरण द्वितीय अध्याय में प्रस्तुत किया जा चुका है । उक्त परिप्रेक्ष्य में द्विवेदी जी की सुदीर्घ काव्य-यात्रा की विकास रेखा ही यहाँ प्रस्तुत की जा रही है । सुविधा के लिए उनकी

काव्य-यात्रा को तीन काल खण्डों में विभक्त किया जा रहा है ।(१)आरंभिक-काल,(२) विकास काल और (३) स्वातंत्र्योत्तर काल ।

१-आरंभिक काल :(१९२०-२१ से १९४० ई० तक)

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि द्विवेदी जी ने सन् १९२०-२१ ई० से अपनी काव्य-यात्रा का प्रारंभ किया था । उनकी कतिपय फुटकल रचनाएं सन् १९२१ ई० में `शिशु`,`गृहलक्ष्मी`, `बालसखा`,`बंगबासी` इत्यादि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं जो आगे चलकर उनकी कतिपय काव्य-कृतियों में संकलित की गईं ।`दूध बताशा`,`पांच कहानियां(पद्य),`सात कहानियां(पद्य)`, `मोदक`,`किसान` आदि ऐसी ही उनकी प्रारंभिक काव्य-कृतियां हैं ।`किसान` को छोड़कर शेष कृतियां बाल-साहित्य से सम्बंधित हैं ।`किसान` में तत्युगीन कृषकों की दयनीय स्थितियों का बिंबात्मक चित्रण है ।

इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय में लिखित `राणाप्रताप`,`खादी गीत`, `श्रद्धांजलि गीत` आदि जो उनकी प्रसिद्ध राष्ट्रीय रचनाएं थीं, आगे चलकर वे `भैरवी` में संकलित की गईं । जीवनी वाले प्रसंग में यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि विद्याध्ययन काल उनकी राष्ट्रीय रचनाओं का बीजवपन काल था ।इसी कालावधि में कवि के मानस पर मालवीय जी, गांधी जी, विद्यार्थी जी तथा शाला-महाशाला के शिक्षकों का संस्कारजन्य प्रभाव परिलक्षित किया जा चुका है। कवि की काव्य-साधना इसी पृष्ठभूमि पर आधारित होकर उन्नति के उत्तुंग श्रृंगों का संस्पर्श कर सकी है ।

२-विकास काल :(१९४१ से १९४६-४७ ई० पर्यन्त)

द्विवेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं का संकलन अद्यावधि प्रकाशित नहीं हो पाया था, यद्यपि उनकी कतिपय राष्ट्रीय कविताएं जन-समाज में प्रसिद्ध हो चुकी थीं । अंत में इंडियन प्रेस-प्रयाग के मालिक श्री हरिकेशव घोष उर्फ `पटल बाबू`

ने जनवरी १९४१ ई० में द्विवेदी जी की प्रसिद्ध राष्ट्रीय रचनाओं का संकलन 'भैरवी' के नाम से प्रकाशित किया । प्रकाशित होते ही 'भैरवी' की सहस्रों प्रतियाँ बिक गईं । इतना ही नहीं पत्र-पत्रिकाओं में उसकी आलोचना-प्रत्यालोचनाएँ भी हुईं । आगामी अध्याय में पुस्तक परिचय के प्रसंग में इस पर अधिक विचार किया जाएगा । किन्तु उसकी प्रभावक्षमता के संदर्भ में यहाँ इतना अवश्य कहना समीचीन लग रहा है कि स्व० मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' का जो प्रभाव अपने युग में परिलक्षित हुआ, प्रायः वही प्रभाव द्विवेदी जी की 'भैरवी' का भी रहा । जिस महान युग नेता के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रभावित होकर 'भैरवी' की अधिकांश रचनाएँ लिखी गईं थीं, उन बापू को प्रत्यक्ष रूप से सेवाग्राम में मिलकर कवि ने 'भैरवी' समर्पित की और उनके आशीर्वाद प्राप्त कर पुनः वे दैनिक 'अधिकार' के संपादन कार्य में संलग्न हो गये । सेवाग्राम स्थित बापू के अत्यन्त सादगीपूर्ण जीवन और कार्य-प्रणाली से प्रभावित और उत्प्रेरित होकर कवि सोत्साह काव्य-सर्जन में रत हो गये । संपादन कार्य के साथ-साथ काव्य-साधना का उनका कार्य शीघ्र गति से चलने लगा ।

'भैरवी' के पश्चात् दूसरे ही वर्ष कवि ने भारतीय राष्ट्रीय परंपरा को अक्षुण्ण रखनेवाली तथा संस्कृति की गरिमामय महिमा को प्रदर्शित करनेवाली 'वासवदत्ता' और 'कुणाल' जैसी दो पुस्तकें प्रकाशित कीं । विभिन्न कवि-सम्मेलनों तथा दिल्ली, आल इंडिया रेडियो से प्रसारित कार्यक्रम में स्वयं कवि के स्वर में 'वासवदत्ता' का पुनः पुनः कविता पाठ सुनकर स्वयं निराला जी, मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० सत्येन्द्र, पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र प्रभृति काव्य-मर्मज्ञों ने 'वासवदत्ता' की प्रभावोत्पादकता के संदर्भ में मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी जो 'वासवदत्ता' की परवर्ती आवृत्तियों में संकलित की गई हैं । तात्पर्य यह कि 'वासवदत्ता' एवं 'कुणाल' जैसी रचनाओं के प्रकाशन से कवि को पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई ।

उक्त रचनाओं के प्रकाशन के उपरान्त दूसरे वर्ष अर्थात् १९४३ ई० में उनकी `चित्रा` एवं `वासन्ती` नामक दो भावपूर्ण गीति रचनाओं का प्रकाशन हुआ जो कवि के विशिष्ट दृष्टिकोण का उद्घाटन करती हैं।

उक्त भावपूर्ण कृतियों के उपरान्त राष्ट्र की शीघ्र परिवर्तनशील राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों का सटीक चित्रण करनेवाली तथा भारतीय संस्कृति की गौरवमयी पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हुए राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद फूंकनेवाली `युगाधार`, `प्रभाती`, तथा `पूजागीत` जैसी तीन काव्य-कृतियां सन् १९४४ ई० में द्विवेदी जी ने प्रकाशित की। द्विवेदी जी के लिए साहित्य-सर्जन का यह स्वर्णयुग था। लखनऊ से नियमित दैनिक `अधिकार` का संपादन कार्य करते हुए चार वर्ष के लघु कालखण्ड में उपर्युक्त आठ काव्य-कृतियों का सर्जन व प्रकाशन कार्य करते रहना एक ओर उनकी काव्य-साधना की अदम्य रुचि का परिचायक है तो दूसरी ओर तत्युगीन विविध गतिविधियों का संपूर्ण चित्र जन-समाज के सम्मुख उपस्थित कर राष्ट्रीय जागरण करने की उनकी तीव्रतम आकांक्षा की पूर्ति का यत्न परिलक्षित होता है।

इतना ही नहीं सन् १९४४ ई० में ही `गांधी अभिनंदन ग्रंथ` जैसे एक महत्वपूर्ण ग्रंथ का संपादन कार्य भी उन्होंने किया। महादेवभाई देसाई तथा कस्तूरबा के आकस्मिक निधन ने गांधी जी पर मानो भीषण वज्राघात किया था। उनकी अस्वस्थता को ध्यान में रखकर द्विवेदी जी ने उनकी ७५ वीं वर्षगांठ पर उक्त अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित करने की एक योजना निर्मित की जो स्व० श्री घनश्यामदास बिड़ला जी की कृपा एवं सत्परामर्श से फलीभूत भी हुई। उसकी बिक्री इतनी शीघ्र गति से हुई कि २ अक्टूबर १९४४ ई० को बापू की हीरक जयन्ती के शुभ अवसर पर उसकी एक प्रति तथा दस हजार रूपये का चेक द्विवेदी जी ने बापू को समर्पित किया। `गांधी अभिनंदन ग्रंथ` का उचित समय पर संपादन कार्य करने पर द्विवेदी जी को साहित्य जगत एवं राष्ट्र के विविध क्षेत्रों में स्नेह-

सम्मानयुक्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई । सन् १९४५ ई० में द्विवेदी जी ने लोकमंगल की उदात्त भावना से परिपूरित तथा पौराणिक आख्यान को नये परिवेश में प्रस्तुत करते हुए `विषपान` नामक खण्डकाव्य का प्रकाशन किया ।

सेवाग्राम जो बापू की कर्मभूमि थी उसकी महत्ता एवं विशेषता को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से द्विवेदी जी ने सन् १९४६ ई० में `सेवाग्राम` का प्रकाशन किया । प्रस्तुत कृति में सेवाग्राम के महत्व के अतिरिक्त अद्यावधि लिखित कवि की प्राय: समस्त राष्ट्रीय रचनाओं को एक ही स्थान में संकलित किया गया।

इसी वर्ष बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत जयंती के पुनीत प्रसंग पर विद्यालय के भूतपूर्व छात्र होने के कारण द्विवेदी जी को भी निमंत्रित किया गया था । इस समारोह में मालवीय जी एवं गांधी जी भी उपस्थित थे । कुछ फुरसद के समय में `वासवदत्ता` की एक-एक प्रति दोनों को भेंट करने पर प्रसंगोचित कुछ सुनाने की आज्ञा होने पर द्विवेदी जी ने ब्रजभाषा में रचित दो कवित्त सुनाये जो दोनों पर लिखे गये थे । द्विवेदी जी के काव्यका अनुशीलन करते समय इन कवित्तों पर भी विचार किया जाएगा ।

इसी वर्ष अर्थात् सन् १९४६ ई० में अग्रज बंधु मोहनलाल के आकस्मिक निधन ने उनकी शीघ्र गति एवं तल्लीनता के साथ अग्रसर होनेवाली काव्य-यात्रा में व्यवधान उपस्थित कर दिया । जिसके संदर्भ में पूर्ववर्ती पृष्ठों में संकेत किया जा चुका है । अब विवश होकर उन्हें पारिवारिक उत्तरदायित्व का निर्वहण करने के निमित्त बिन्दकी आकर रहना पड़ा । साहित्य-सर्जन एवं सम्पादन कार्य में अपना पूर्ण-कालिक समय प्रदान करनेवाले कवि की गति में शैथिल्य आ गया । इधर १५अगस्त १९४७ ई० में स्वाधीनता प्राप्ति का हमारा लक्ष्य भी पूरा हो गया। तदर्थ स्वभावत: काव्य-सर्जना का वह तीव्र भावावेग भी न रहा ।

स्वातंत्र्योत्तर काल :

सन् १९४७ ई० में अपने आराध्य देवता बापू का आकस्मिक निधन हो जाने पर अत्यन्त दु:खी एवं कातर स्वर में बापू पर कतिपय रचनाएं लिखकर कवि ने सन् १९५४ ई० में `चेतना` का प्रकाशन किया । यद्यपि उसके पूर्व उन्होंने १९४९ ई० में `शिशुभारती`, १९५३ ई० में `बालभारती`, `झरना` आदि बाल-साहित्य परक काव्य कृतियों के संकलन प्रकाशित किये थे । १९५४ ई० में दूसरी काव्य- कृति `सुजाता` भी प्रकाशित हुई ।

सन् १९५६ ई० में उन्होंने दो कृतियां प्रकाशित कीं । एक ओर बाल-काव्य `बच्चों के बापू` इंडियन प्रेस-प्रयाग से प्रकाशित हुई तो दूसरी ओर उसी प्रेस से `जय गांधी` नामक कृति संपादित की ।

`बांसुरी` नामक बाल-काव्यों का संकलन १९५७ ई० में इंडियन प्रेस से ही प्रकाशित हुआ । बाल-कवि के रूप में अब द्विवेदी जी साहित्य-जगत में प्रसिद्ध हो चुके थे । तदर्थ इंडियन प्रेस से ही प्रकाशित `बाल सखा` के संपादन कार्य का दायित्व भी उन्हें निभाना पड़ा । १९५७ से १९६८ ई० तक के ग्यारह वर्षों की दीर्घ समयावधि पर्यन्त संपादन कार्य करते हुए उन्होंने उसे व्यापक धरातल पर रख दिया । इस अवधि के अंतर्गत उन्होंने `हँसो हँसाओ` चाचा नेहरू`, `दस कहानियां` (पद्य) आदि बाल-काव्य-कृतियाँ प्रकाशित कीं । इधर १९६९ ई० में गांधी शताब्दी वर्ष के निमित्त `गांधी अभिनंदन ग्रंथ` (संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण) का संपादन कार्य द्विवेदी जी ने संभाला । साथ ही सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली से प्रकाशित `गांधी शतदल` विभिन्न भाषाओं में लिखित गांधी जी पर १०० श्रेष्ठ कविताओं का संपादन कार्य भी उन्होंने शताब्दी वर्ष में ही संभाला ।

तत्पश्चात् सन् १९७१ से १९७६ ई० तक में उन्होंने `शिशुगीत`, `मुक्तिगंधा`,

'हम बालवीर', 'हुआ सबेरा उठो उठो' प्रभृति काव्य-कृतियाँ प्रकाशित कीं। साथ ही 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' शीर्षक से पारषद जी की प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध रचनाओं को संपादित करके हिन्दी साहित्य जगत को लाभान्वित किया।

अद्यावधि दिये गये विवरण के आधार पर यह प्रतीत होता है कि द्विवेदी जी ने दीर्घ काव्य-यात्रा के अंतर्गत अनेक मौलिक एवं संपादित काव्य-कृतियों का प्रकाशन कर हिन्दी साहित्य विशेषकर राष्ट्रीय काव्य-धारा के क्षेत्र की अभिवृद्धि की है। सुविधा के लिए द्विवेदी जी की समस्त मौलिक एवं सम्पादित काव्य-ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की जा रही है।

द्विवेदी जी की मौलिक तथा संपादित रचनाएँ

क्रम	पुस्तक	प्रकाशक	प्रकाशन तिथि
१	दूध बताशा	भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग	१९३० (१९५४ पुनः)
२-	पांच कहानियाँ (पद्य)	सरस्वती पब्लि० हाउस-प्रयाग	१९४०
३-	सात कहानियां (पद्य)	,,	१९४०
४-	मोदक	,,	१९४०
५-	किसान	,,	१९४०
६-	भैरवी	इंडियन प्रेस, प्रयाग	१९४१
७-	वासवदत्ता	,, ,,	१९४२
८-	कुणाल	,, ,,	१९४२
९-	चित्रा	नवयुग पब्लि०हा० लखनऊ	१९४३
१०-	वासन्ती	,, ,,	१९४३
११-	प्रभाती	साहित्य भवन प्रा० लि० प्रयाग	१९४४
१२-	पूजागीत	इंडियन प्रेस, प्रयाग	१९४४

१३	युगाधार	अवध पब्लि0हाउस-लखनऊ	१९४४
१४-	विपुल	साहित्य भवन प्रा0 लि0 प्रयाग	१९४४
१५-	विषपान	इंडियन प्रेस-प्रयाग	१९४६(१९५५ पुन:)
१६-	सेवाग्राम	,, ,,	१९४६
१७-	चेतना	,, ,,	१९४८(१९५४ पुन:)
१८-	शिशुभारती	,, ,,	१९४९
१९-	बालभारती	,, ,,	१९५३
२०-	जयगांधी	,, ,,	१९५६
२१-	बाँसुरी	,, ,,	१९५७
२२-	हँसो हँसाओ	,, ,,	१९६०
२३-	नेहरू चाचा	,, ,,	१९६३
२४-	दस कहानियां	,, ,,	१९६३
२५-	बच्चों के बापू	,, ,,	१९६९
२६-	गांधी अभिनंदन ग्रंथ	गांधी शताब्दी समिति,उ0प्र0	१९६९
२७-	गांधी शतदल	सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारतसरकार,नई दिल्ली	१९६९
२८-	शिशुगीत	,, ,,	१९७१(१९७८ पुन:)
२९-	झण्डा ऊंचा रहे हमारा	नेशनल पब्लि0 हा0 दिल्ली	१९७२
३०-	मुक्तिगंधा	,, ,,	१९७२
३१-	हम बाल वीर	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	१९७६
३२-	हुआ सबेरा उठो उठो	शिक्षा भारती, दिल्ली	१९७६

~~युग भारती~~

<u>द्विवेदी जी की राष्ट्रीयता विषयक अवधारणायें :</u>

भारत एक राष्ट्र है । उसकी राष्ट्रीयता एवं उसके विधायक तत्वों के संदर्भ में

प्रथम अध्याय में सविस्तर विवरण दिया जा चुका है । साथ ही यह सिद्ध भी किया गया है कि भारत की राष्ट्रीयता विश्व की एक उदात्त एवं गरिमामय सांस्कृतिक विरासत से संपन्न है । जिस देश ने अपने भव्य चिन्तन एवं व्यवहार के द्वारा युगों पूर्व समस्त विश्व को ज्ञानामृत पिलाकर मानव प्रेम का दिव्य सन्देश सुनाया था, पराधीनावस्था में वही देश आत्मशक्ति के प्रभापुंज को विस्मृत कर परमुखापेक्षी हो गया था । तदर्थ पराधीनता की शृंखलाओं को विच्छिन्न कर उसे पुन: विश्व में अपना निजी गरिमामय स्थान प्रदान ~~करने~~ कराने का भगीरथ कार्य देश के सम्मुख उपस्थित था । राष्ट्र को देश प्रेम की उष्मा से ओतप्रोत एवं कर्मठ नेता की आवश्यकता थी । संयोग से महात्मा गांधी जैसा युग नेता भारत को संप्राप्त हुआ । वह न केवल भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता को ही अपना लक्ष्य मानते थे अपितु इसके उपरांत भारत का नव निर्माण भी चाहते थे । ~~उन्होंने यह समझ लिया था कि भारत [illegible]~~ । उन्होंने यह समझ लिया था कि भारत अपनी सांस्कृतिक निधि की सुरक्षा एवं उसकी पुन: प्रस्थापना के द्वारा ही मानवता का दिव्य-संदेश विश्व भर में पुन: प्रसारित कर सकता है । तदर्थ भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्यों के माध्यम से सत्य और अहिंसा के आधार पर लक्ष्य प्राप्ति करने का उन्होंने आजीवन यत्न किया । हमारे आलोच्य कवि द्विवेदी जी भी उक्त भावना से परिपूरित होकर भारतीय राष्ट्रीयता की संस्थापना के लिए अपना संपूर्ण जीवन राष्ट्र के चरणों में समर्पित कर देते हैं । राष्ट्र प्रेम और माँ भारती की कल्याण-कामना उनका जीवन-लक्ष्य बन गया है । माँ भारती को अपनी इष्ट देवी मानते हुए उसके निरन्तर उपकारों के बदले में उसकी नि:स्वार्थ सेवा करते रहना पसंद करते हैं । कवि स्वयं इसकी भावाभिव्यक्ति इस प्रकार करते हैं, 'मेरी इष्टदेवी एक मात्र राम, कृष्ण, तिलक, गोखले, गांधी की जननी भारत माता है । मैं शत-शत जन्म धारण करके भी अपनी इष्ट देवी के ऋण से मुक्त नहीं हो सकता । मेरी लेखनी भारतमाता के वर्तमान और भविष्य की ही आराधिका है । मेरा जीवन और मेरी कलम भारत माता की सेवा में ही एकान्त समर्पित है ।'[22] तभी तो गांधी जी के सिद्धान्तों एवं जीवन दर्शन का समर्थन करते हुए द्विवेदी जी राष्ट्रीय जागरण एवं उसके निरन्तर उन्नयन को अपने

काव्य का प्रतिपाद्य विषय बनाकर भारतीय राष्ट्रीयता की प्रस्थापना का यत्न करते रहे। भारत जननी से अगाध प्रेम होने के कारण उसके चरणों में पराधीनता की श्रृंखलाएँ देखकर वे निरंतर छटपटाते रहे। राणा, शिवा, गांधी, सुभाष, जवाहर प्रभृति सभी लाल उन्हें अतीव प्यारे लगे किन्तु इन सभी से प्यारी वह माँ लगी जिसने उन्हें जन्म दिया। संभवतः 'भैरवी' के मंगलाचरण में उसी माँ की वन्दना करते हुए उसके लिए अपना मस्तक दान करने की उन्होंने घोषणा की।

यद्यपि उनके जीवन में माँ भारती का प्रेम और उसका उत्कर्ष प्रधान लक्ष्य रहा, तथापि यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि उनका राष्ट्र-प्रेम भौगोलिक सीमाओं में आबद्ध रहकर किसी जाति या धर्म के उन्नयन के लिए ही अभिव्यक्त नहीं हुआ और न किसी अन्य राष्ट्र की स्वच्छंद प्रगति में बाधक सिद्ध हुआ। इसके विपरीत उनका राष्ट्र प्रेम भौगोलिक सीमाओं का उल्लंघन कर विशुद्ध मानव प्रेम में परिणत हुआ है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की व्यापक प्रेम-भावना का निरंतर निर्वहण उनका काव्य करता रहा है। इस तथ्य का साक्ष्य उनकी इन पंक्तियों में परिलक्षित किया जा सकता है।

'मेरे हिन्दू औ' मुसलमान। रे अपने को पहचान जान।
हम लड़ जाते हैं आपस में, मंदिर मस्जिद हैं लड़ जातीं।
हम गड़ जाते हैं धरती में, मंदिर मस्जिद हैं गड़ जातीं।
मंदिर मस्जिद से ऊपर हम, रे अपने को पहचान जान।'[२३]

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी जी का काव्य सच्ची मानवता का संपोषक है जो भारतीय संस्कृति के आधार पर परिपुष्ट है। अर्थात् कवि की राष्ट्रीयता विषयक अवधारणाएँ कल्पित सीमाओं में आबद्ध रहनेवाली संकीर्ण विचारधारा की वाहिका नहीं हैं, अपितु विश्वजनीन व्यापक धरातल पर आधृत वैश्विक मानव-प्रेम से परिपुष्ट भी है।

--

सन्दर्भ सूची :

१- लै० अमरबहादुर सिंह 'अमरेश', 'काव्य के इतिहास पुरुष, पृ० ४

२- वही, पृ० ५

३- अमरबहादुर सिंह 'अमरेश', 'काव्य के इतिहास पुरुष, पृ० २०

४- डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', 'मधुर स्मृति' लेख, द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, पृ० ६१ से उद्धृत ।

५- अमरबहादुर सिंह 'अमरेश', 'काव्य के इतिहास पुरुष, पृ० ४०

६- वही, पृ० ३३

७- वही, पृ० ३४

८- वही, पृ० २७

९- (अ) प्यासा कुएँ के पास जाता है, कुआँ प्यासे के पास नहीं। मैं अपनी रचनाएँ लेकर किसी प्रकाशक के पास जाने में अपना तथा अपनी कला दोनों का अपमान समझता हूँ।'

(आ) 'कविताएँ प्रकाश में हैं, मैं प्रकाश में हूँ, मेरे पाठक प्रकाश में हैं, संकलन प्रकाश में आये या न आये, मुझे उसकी चिंता नहीं। मैं अपना निश्चय न तोड़ूँगा।'

(काव्य के इतिहास पुरुष, लै० अमरेश, पृ० ५८-५९ से उद्धृत)

१०- हृदय की धड़कनों के स्वर' शीर्षक लेख, श्री निरंकार देव सेवक, द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, पृ० १६८ से उद्धृत ।

११- 'सहजशालीन व्यक्तित्व' शीर्षक लेख, डा० इन्द्रशेखर, द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ से उद्धृत भावार्थ, पृ०१०५

१२- 'हृदय की धड़कनों के स्वर' श्री निरंकार देव सेवक, 'एक कवि एक देश-द्वि०अभि०ग्रंथ, १६८

१३- 'ज्यों की त्यों धर दीन चदरिया' शीर्षक, श्री हरिप्रसाद गुप्ता, एक कवि-एक देश- द्वि० अभि० ग्रंथ, पृ० १३६

१४- अनुसंधित्सु के प्रत्यक्ष मिलनानुभव के आधार पर ।

१५- `मानवता तथा राष्ट्र के पुजारी` शीर्षक, श्री यशपाल जैन, द्वि०अभि०ग्रंथ, पृ०७२

१६- हृदय की धड़कनों के स्वर`(शीर्षक)श्री निरंकार देव सेवक,
द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, पृ० १६७

१७- `हृदय की धड़कनों के स्वर`(शीर्षक) श्री निरंकार देव सेवक,
द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, पृ० १७०

१८- वही,

१९- वही, पृ० १७०

२०- गांधी अभिनंदन ग्रंथ में कृपे गांधी जी के आशीर्वाद को देखिए ।

२१- `बाल साहित्य के जनक`(शीर्षक) प्रो० श्री राष्ट्रबन्धु, द्वि०अभि०ग्रंथ, पृ० २४६

--